chapter 3

तृतीय अध्याय :

स्वामिनारायण संप्रदाय : उद्‌भव एवं विकास

* स्वामिनारायण सम्प्रदाय के संत कवियों का व्यक्तित्व

(सहजानंद स्वामि, मुक्तानंद स्वामि, निष्कुलानंद स्वामि, प्रेमानंद स्वामि, ब्रह्मानंद स्वामि, अविनाशानंद स्वामि, देवानंद स्वामि, मंजुकेशानंद स्वामि)

* स्वामिनारायण सम्प्रदाय का साहित्य

तृतीय अध्याय :

स्वामिनारायण संप्रदाय : उद्‌भव एवं विकास

किसी भी सम्प्रदाय के उद्‌भव एवं विकास में उस समय की तत्कालीन परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। 18वीं शती से पूर्व सामाजिक परिस्थिति विषम बनती जा रही थी। समकालीन समाज संकीर्ण, अनुदार, कुरीतिपूर्ण था। तत्कालीन समाज में छुआछूत, अंधविश्वास, धर्म के नाम पर आडम्बर आदि व्याप्त थे। कुप्रथाओं में बालविवाह बहुविवाह, अनमेल विवाह, ज़न्मते ही कन्या की हत्या,[1] विधवा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थे। तो जाती के नाम पर कट्टरता जुआ, शराब, वेष्यागमन, चोरी, हिंसा आदि व्यभिचार पूरजोर पर थे। तत्कालीन समाज में व्यापक अव्यवस्था जन्य कुप्रबंध के परिणामस्वरूप ग्राम्य जीवन की प्रणाली अस्त व्यस्त हो गई थी। दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे बाह्य आक्रमणों के कारण कृषिकर्म करनीय नहीं रह गया था। साथ ही भूमि अधिकार एवं कर संबंधी कोई नियम न रहने से आत्मनिर्भर ग्राम्य व्यवस्था का अभाव ग्रसित हो रहा था। तत्कालीन समाज में तंत्र-मंत्र का बोलबाला था। सिद्धों और नाथों ने अपने से लोगों को खूब प्रभावित कर रखा था। सिद्धों का वर्णन श्री हरि के वन-विचरण के अंतर्गत आने वाले सीरपुर में है। ये भूत, प्रेत, काली, भैरव आदि की उपासना करते थे और अपने को शीत-उष्ण से परे समझाने का आडंबर करते थे।[2] उस समय में ऐसे संप्रदायों में सुरापान, मांसाहार, व्यभिचार, कुलचारी-पान आदि साधना के लिए आवश्यक समझा जाता था।[3]

गोरखपंथी, सहजिया, वीरासवी, कापालिक, अवधूत, कनकटे संन्यासी आदि अनेक प्रकार के विचित्र वेशभूषा, क्रियाकलाप, साधना एवं सिद्धि वाले मत चल निकले थे जिनका गुजरात में 18वीं शताब्दी और 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में खूब प्रचार था।[4]

तत्कालीन समय की राजनीतिक परिस्थिति, समाजिक परिस्थिति से अधिक भिन्न नहीं थी। 18वीं शताब्दी का समय केवल गुजरात ही नहीं, संपूर्ण भारत के प्रत्येक क्षेत्र में अव्यवस्था और पराभव का समय था।[5] इस समय में मानव जीवन में सक्रिय आदर्श तथा सामूहिक उत्तरदायित्य की भावना का अभाव था। 18वीं शताब्दी के पश्चात वल्लभ सम्प्रदाय और उसका प्रभाव घट रहा था।[6]

तत्कालीन समय में व्याप्त पुष्टि सखी, राधावल्लभ आदि राधाकृष्ण युगलविग्रह के भक्ति परक संप्रदायों में भौतिक संपत्ति, विलासिता आदि की प्रचुरता का प्रादुर्भाव हुआ। डॉ. रमणलाल पाठक के मतानुसार इसे वैष्णव धर्म का शोधित, वर्धित संस्करण कहा जा सकता है।[7] भद्र समाज द्वारा जिनको निम्नस्तरीय वर्ग माना जाता है, ऐसे श्रमजीवी वर्ग के सर्वांगी उत्थान के लिए चेतनासम्पन्न प्रस्तुत सम्प्रदाय है।

इसके संस्थापक श्री स्वामीनारायण के नाम से अभिहित किए जाते हैं। इस सम्प्रदाय के नीव रखनेवाले आत्मानंद थे, जो शांकर सिद्धांत को मानते थे। लक्ष्मीनारायण को अपना आराध्य मानने स्वीकारने वाले स्वामीनायायण सम्प्रदाय ने नारायण को अपना स्वामी माना है। इसलिए इस सम्प्रदाय का नामकरण स्वामीनारायण सम्प्रदाय हुआ। लक्ष्मी और नारायण की उपासना प्रधान प्रस्तुत सम्प्रदाय प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत के साथ-साथ वल्लभाचार्य निरुपित पुष्टिमार्गीय सेवाप्रणाली और शुद्धाद्वैत दर्शन का सम्मिश्रण दृष्टिगत होता है। किन्तु यह सम्मिश्रण सुधारवादी है। शरीर और मन की शुद्धता के साथ इसमें आत्मा की शुद्धता की बात है। इसलिए इसके सिद्धांत एवं साधना पक्ष पर उन वैष्णव सम्प्रदायों का केवल प्रभाव देख सकते हैं। क्योंकि मान्यताओं और उपासना पद्धति दोनों में ही काफी परिवर्तन किए गए मिलते हैं।[8]

सहजानंद स्वामी :

अयोध्या के पास छपैया गाँव में सं. 1837 के चैत्र सुद 9मी की रात को दुर्वासा ऋषि के शापनिवारण हेतु स्वयं भगवान कृष्ण ने माता भक्ति के यहाँ श्री हरिकृष्ण महाराज का

जन्म हुआ।[9] इनका पूर्वावस्था का नाम घनश्याम था।[10] मार्कण्डेय ऋषि ने इनका हरि, कृष्ण एवं हरिकृष्ण नामों से नामकरण किया। 11 वर्ष 3 माह वे अपने माता-पिता के साथ रहे। उसके बाद सं. 1849 आषाढ़ सुद 10 को वे अयोध्यापुरी होते हुए वन की ओर प्रयाण कर गए[11] और नीलकंठ ब्रह्मचारी के नाम से देश भर में परिभ्रमण करते रहे। सं. 1856 जेष्ठ वद 12 के दिन पीपलाणा गाँव में उद्धव का अवतार माने जाने वाले उद्धव संप्रदाय के संस्थापक स्वामी रामानंद से मीले।[12] तत्पश्यात् सं. 1857 कार्तक सुद 11 को सहजानंद स्वामी ने रामानन्दस्वामी से उद्धव सम्प्रदाय की दीक्षा ली। सं. 1858 के मार्गशिर्ष सुद 13 के दिन श्री रामनन्दस्वामी ने एक माह पहले सहजानंद स्वामी को आचार्य पद सौपकर उसका प्रचार करने का उपदेश देकर[13] देह त्याग किया। वे सौराष्ट्र, कच्छ तथा गुजरात में 28 वर्ष तक उपदेश करते रहे। उन्होंने अपने मत के साधुओं के लिए कड़े नियम बनवाए थे। धन और स्त्री के त्यागपर बल दिया। उन्होंने यज्ञ से हिंसा दूर की; हत्या, विधवाओं की सती-प्रथा बन्द करवाई, अन्धविश्वासों को न मानने का उपदेश दिया इन्होंने सभी समाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों से मोर्चा लिया। इनके इन सुधारवादी कार्यों के कारण अंग्रेज उन्हें बहुत मानते थे।

संक्षिप्त में सहजानंद स्वामी अच्छे संस्थापक और योजना पारंगत व्यवस्थापक थे। उनकी उपदेश शैली की भाषा अत्यंत सरल थी जो सामान्य जनता बहुत सरलता से समझती थी और उसे ग्रहण करती थी।

सहजानंद स्वामी को ''श्रीजी महाराज'' भी कहा जाता है। सहजानंद स्वामी ने सौराष्ट्र में अनेक मंदिरों की स्थापना की एवं विशेषकर निम्नवर्ग की जनता को व्यसनमुक्त कराकर, उन्हें प्रामाणिक, धर्मनिष्ठ एवं चेतना-सम्पन्न बनाया । इस सम्प्रदाय में विशेष बल संयम, सदाचार एवं सेवाभाव पर दिया जाता है। इस सम्प्रदाय में गुरुभक्ति को अनन्य स्थान दिया गया है। इस सम्प्रदाय के अनेक साधु-संतों ने हिन्दी एवं गुजाराती दोनों भाषाओं में ज्ञान एवं भक्ति से परिपूर्ण काव्य की रचना करी है।

रामानंद स्वामी के समय में सम्प्रदाय की साहित्यिक गतिविधि, मात्र आठ ग्रंथों के पठन-पाठन तक ही सीमित थी। नैमितिक कर्म के रूप में श्रीमद् भागवत् के दशम स्कंध से (रास) पंचाध्यायी का नियमित पाठ, तथा कीर्तन भक्ति के उद्देश्य से भजन स्त्रोत आदि का सामूहिक सस्वर गायन भी प्रचलित था। कीर्तनादि सत्संग की रचाएँ विशेष न हो कर अन्य

लोगों द्वारा गाये जाते थे। दार्शनिक सिद्धांतों को समजने के विचार से रामानुजाचार्य कृत भाष्यादि पढ़ने का चलन था जिसे रामानंद स्वामी स्वयं पढ़ाया करते थे।

सहजानंद स्वामी ने अपने आचार्य काल में यह आवश्यकता अनुभव की कि सम्प्रदाय का अपना साहित्य होना परमावश्यक है। किन्तु अपने आचार्य काल के आरंभिक वर्षों में उन्हें कड़े विरोधों का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप वे इस ओर विशेष ध्यान नहीं दे सके। यह निश्चित है कि रामानंद स्वामी के समय में किसी भी सत्संगी ने कोई रचना नहीं की थी। यह संभव हैं कि स्फुट पद रचना करते रहे हों, किन्तु जितना साहित्य उपलब्ध होता है उसमें न तो कोई ग्रंथ का रामानंद स्वामी की आज्ञा से लिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है, न कोई ग्रंथ रामानंद स्वामी के नाम पर ही लिखा गया मिलता है। सभी प्रकार के उपलब्ध साहित्य में कवियों द्वारा सहजानंद स्वामी का ही प्रेरक के रूप में, इष्टदेव के रूप में अथवा अन्य किसी प्रकार से उल्लेख किया गया है।

हम यह कह सकते हैं कि इस सम्प्रदाय का समस्त साहित्य सहजानंद स्वामी को ही केन्द्र बिन्दू बनाकर लिखा गया है। स्फुट पदों में रामानंद को स्मरण भर किया गया है। क्योंकि उनकी जयंती मनाने के अवसर पर ऐसे पदों का उपयोग किया जाता है।

सहंजानंद ने ही संस्कृत, गुजराती और हिन्दी भाषाओं में साहित्य रचना की परम्परा की। भाई मनीलाल सी. पारेख ने सहजानंद स्वामी द्वारा सम्प्रदाय की साहित्यिक परम्परा की स्थापना के कारण के रूप में स्वामीनारायण सम्प्रदाय के किसी साधु का दार्शनिक सिद्धांतों सम्बन्धी शास्त्रार्थ में किसी सभा में पराजित होना भी माना है।[14] शास्त्रियों की सभा में अपने सम्प्रदाय के साधु के अपमानित होने से सहजानंद स्वामी को सम्प्रदाय में साहित्यिक गतिविधि के अभाव को दूर करने पर कटिबद्ध होना पड़ा। सहजानंदजी की कार्यक्षमता बहुमुखी थी यही कारण था कि अल्पकाल में ही सम्प्रदाय साहित्यिक दृष्टि से भी समृद्ध हो गया। सहजानंद स्वामी ने और भी अवसरों के लिए अपने अनुयायियों के लिए श्रेष्ठ साहित्य की आवश्यकता अनुभव की थी। एक बार स्वामीजी अपने एक अनुयायी के घर विवाह प्रसंग में सुखपुर गये जहाँ उन्होंने स्त्रियों को अश्लील गायन गाते हुए सुना और उसी समय उस स्थान का परित्याग किया और गढ़डा आकर मुक्तानंद स्वामी को आज्ञा दी कि सत्संगियों में मांगलिक अवसरों पर गाने के लिए वे साहित्य रचना करें।[15] सम्प्रदाय में आयोजित विभिन्न उत्सवों के

अवसर पर कीर्तन के निमित्त, एवं संध्या आरती के अवसर पर नित्य गायन के लिए भी सुन्दर कीर्तन रचने का आदेश सहजानंद स्वामी ने ब्रम्हानंद आदि सम्प्रदाय के कवियों को दिया था। उन्होंने यहाँ तक कहा है कि जो व्यक्ति ब्रह्मानंद स्वामी द्वारा रचित सौ कीर्तन नित्य गायेगा उसे वे (सहजानंद स्वामी) प्रत्यक्ष दर्शन देंगे।[16]

सहजानंद स्वामी ने माघ मास में नित्य वसंतलीला और फाल्गुन मास में नित्य फाल्गुनी दिव्यलीला एक-एक मास तक गाने की व्यवस्था दी है।

सम्प्रदाय की साहित्यिक परम्परा स्थापित करने की दिशा में कार्य करने के समय सहजानंद स्वामी ने अनुभव किया कि उनके शिष्यों में संस्कृत भाषा के पर्याप्त ज्ञान की कमी है। तब उन्होंने अपने योग्य शिष्यों को सूरत के एक पण्डित के पास संस्कृत भाषा सीखने के लिए भेजा। इतना ही नहीं उन्होंने गुजरात के एक प्रसिद्ध संस्कृत भाषा के पंडित को भी नियुक्त किया जो सम्प्रदाय के साधुओं को विधिवत संस्कृत की दीक्षा दिया करते थे।

सम्प्रदाय में साहित्यिक वातावरण उत्पन्न करने के लिए सहजानंद स्वामी ने पढ़ने लिखने तथा काव्य रचना करने वाले साधुओं को उनकी वय आदि का विचार न करके यथेष्ट सम्मान देना आरंभ कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े समय में ही सम्प्रदाय में सहजानंद स्वामी के आदेशानुसार यथेष्ट साहित्यिक रचनाएँ की गईं। यहाँ तक रुचि ली कि काव्य में सरलतापूर्वक बैठाये न जा सकने के कारण उन्होंने अपने साधुओं के नाम तक बदल दिये और उनके नाम ऐसे रखे जिन्हें छन्दों में भलि भाँति लिखा जा सके।

माघ शुक्ल पंचमी, संवत 1882 विक्रमी को गुजराती भाषा में सहजानंद स्वामी ने सम्प्रदाय के मूल ग्रंथ के रूप में **''शिक्षापत्री''** नामक ग्रंथ की रचना की[17] और अपने शिष्य शतानंद स्वामी से उसका संस्कृत भाषा में अनुवाद कराया अपनी गद्दी के वसीयतनामे के रूप में उन्होंने अगहनी पूर्णिमा, संवत् 1883 विक्रमी के ''दशवेशविभागनो लेख'' गुजराती भाषा में लिखा जिसका अनुवाद संस्कृत में शतानंद स्वामी से कराया था। सहजानंद स्वामी के प्रवचन उनके चार शिष्यों ने गुजराती भाषा में संग्रहीत किये और जिसका सहजानंद स्वामी की आज्ञा से **''हरि वाक्य सुधासिंधु''** शतानंद स्वामी ने संस्कृत में अनुवाद किया। सं. 1886 जेष्ठ सुद 10 के दिन 49 वर्ष की उमर में उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।[18]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीनारायण-सम्प्रदाय में सहाजनंद स्वामी के प्रयत्नों

के फलस्वरूप एकाधिक भाषाओं में साहित्य रचना की शुद्ध परम्परा चल पड़ी।

मुक्तानंद स्वामी (1761-1830) :

गुजरात के सौराष्ट्र प्रदेश-स्थित अमरेली ग्राम में संवत 1814 वि.[19] में राधाबा और आनंद राम के घर पुत्र मुकुन्ददास का जन्म हुआ जो बाद में मुक्तानंद स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके पिता आनंद राम शास्त्रों के ज्ञाता, सरल हृदय एवं धार्मिक गृहस्थ थे। मुक्तानंद स्वामी को बाल्यकाल से ही धार्मिक संस्कार मिले थे और इस कारणवश उन्हें धार्मिक प्रवृत्ति शास्त्र एवं पुराण आदि के पठन में अधिक रुचि थी, वे स्वयं तुलसीकृत ''रामचरित मानस'' का सरस्वर पाठ भी किया करते थे। मुक्तानंद स्वामी कुशाग्रबुद्धि एवं बहुज्ञानी थे; खेल-कूद के साथ-साथ उन्होंने संगीत-कला, वैद्य आदि विषयों में अच्छी ख्याती अर्जित की थी।

मुक्तानंद स्वामी की इच्छा विरुद्ध जब उनके माता-पिता ने उन्हें विवाह सूत्र में बाँध दिया, तब उन्होंने उन्माद का ढोंग किया, खूब प्रयत्न करके घरवाले जब हार गये तब इन्हें असाध्य समझकर घर से निकाल दिया[20] सांसारिक मोह माया को त्यागकर अत्यंत प्रसन्न हृदयी होकर वे ध्रागंध्रा के प्रसिद्ध साधु-द्वारकादास की सेवा में पहुँचे, इनकी निष्काम सेवाभावना को देखकर अपनी सीमा-मर्यादा को स्वीकार कर द्वारकादास ने स्वयं से अधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले बांकानेर निवासी कल्याणदास के पास जाने की सलाह दी। कल्याणदास ने इनका पूरा वृतांत सुना और उन्हें सरघापुर के महात्मा तुलसीदास के पास भेज दिया। अपने अभिलाषि गुरु की प्राप्ति के लिये मुक्तानंद स्वामी महात्मा तुलसीदास के पास पहुँचे गये, तुलसीदास ने इन्हें दीक्षा देकर शिष्य रूप में स्वीकार किया, अपने दीप्तिमान व्यक्तित्व के कारण शीघ्र ही सर्वाधिक लोकप्रिय और तुलसीदास के पट्ट शिष्य बन गये, सरघापुर में तुलसीदास की ओर से एक सदाव्रत भी चलता था, उसकी संपूर्ण व्यवस्था भी इनके हाथ में आ गई ।

वही एकबार सरघापुर में रामानंद स्वामी आए हुए थे सब लोग उन का प्रवचन सुनने जाते थे, एक दिन जिज्ञाशा वश मुक्तानंद स्वामी भी अनका प्रवचन सुनने गये, उनका प्रवचन सुनकर मुक्तानंद को परम संतोष का अनुभव हुआ, और उन्हें अपना गुरु बनाने का निश्यय किया। उन्होंने रामानंद से प्रार्थना की कि वे उन्हें अपना शिष्य बना ले, सरघापुर में इनकी

ख्याती कई गुरु बदलने वाले शिष्य के रूपमें हुई थी, रामानंद ने यह सुना था, तथा यह भी विचार किया कि उन्हें शिष्य बनाने पर महात्मा तुलसीदास उपद्रव खड़ा करेंगे अतः उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि जब तक तुलसीदास का स्वीकृतिपत्र न हो तब तक वे उन्हें अपना शिष्य नहीं बना सकते। जब मुक्तनांद ने तुलसीदास से उन्हें मुक्त कर देने की प्रार्थना की तब तुलसीदांस ने उंनपर कड़ा प्रतिबंध लगा दिया। मुक्तानंद ने पुनः युक्ति का आश्रय लिया और सदाव्रत में उदारता की वृद्धि कर दी, प्रटट् शिष्य को उड़ाऊ हुआ देख कर तुलसीदास ने उन्हें अपनी शिष्यावली से बहिष्कृत कर दिया और अपनी युक्ति से सफलता पार कर प्रसन्न होकर मुक्तानंद ने उनसे अपने निश्काशन का प्रमाणपत्र भी लिखवा लिया और यह प्रमाणपत्र लेकर बंधिया में रामानंद स्वामी के पास पहुँचे। रामानंद स्वामी ने उन्हें सरलतासे अपना शिष्य नहीं बनाया, उनकी परीक्षा लेने हेतु उन्हें अपने अनुयायी मूलूभाई गराशिया के घर पर रहकर खेती करने की आज्ञा दी। रामानंद स्वामी द्वारा ली गई इस परीक्षा में न केवल वे सफल हुए बल्की अपनी श्रेष्ठ गुरु भक्ति को सिद्ध करते हुए अपने सदचरित्र एवं साधुता के कारण रामानंद स्वामी के पटट् शिष्य का स्थान भी प्राप्त कर लिया ।

रामानंद स्वामी का मठ लोजपुर में था वहीं मुक्तानंद स्वामी की सहजानंद स्वामी से भेंट हुई। मुक्तानंद स्वामी हृदय से त्यागी और गुरु के आज्ञाकिंत शिष्य थे। यही कारण था कि आचार्यपद के सच्चे अधिकारी होने के बावजूद भी गुरु रामानंद द्वारा स्वामी सहजानंद को आचार्य पद दिये जाने पर अन्य लोगों की भाँति उनका विरोध नहीं किया बल्कि अपने गुरु की आज्ञा को ईश्वर की इच्छा मानते हुए उन्होंने हृदय से स्वामी सहजानंद को स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं रामानंद स्वामी द्वारा सहजानंद स्वामी को नारायण कहे जाने पर उन्होंने आजीवन सहजानंद स्वामी को परब्रह्म रूप में ही माना, और सब दिन उनके प्रति अविचल भिक्ति का परिचय दिया [21]

सहजानंद स्वामी के बाद सम्प्रदाय में मुक्तानंद स्वामी का ही स्थान था। स्वयं सहजानंद स्वामी उनका बड़ा आदर करते थे और समान भाव का मित्रतापूर्वक व्यवहार रखते थे । वचनामृत में अनेक स्थानों पर सहजानंद स्वामी द्वारा मुक्तानंद स्वामी की प्रशंसा प्राप्त होती है। वैद्य होने के साथ-साथ वे कवि भी थे। स्वामी मुक्तानंदजी की संस्कृत, गुजराती तथा हिन्दी तीनों भाषाओं में सुन्दर रचनाएँ प्राप्त होती हैं। पांडित्य एवं विद्वता के विचार से

भी सम्प्रदाय में उनका स्थान अग्रिम था। बड़ौदा में उन्होंने शास्त्रार्थ में रामचन्द्र, हरिशचन्द्र, शोमाराम, नारूपंत, चिमनराव जैसे प्रकांड पंडितों को परास्त किया था।

मुक्तानंद ने ब्रजभाषा में 17 ग्रंथों की रचना की है जिनमें पंचरत्नम् विवेकचिंतामणि, सत्संग शिरोमणि, नारायण कवच, शिक्षापत्री भाषा, मुकुंदबावनी अवधूतगीतम्, गुरुचोबीशी, और कपिल गीता आदि है। गुजराती साक्षर कवि दलपतराम ने मुक्तानंद स्वामी की वाणी की तुलना गंगा के प्रवाह के साथ की है। क्योंकि मुक्तानंद स्वामी स्वामीनारायण सम्प्रदाय के दीक्षित कवि थे, अतः उनकी कविताओं में सांम्प्रदायिक दर्शन का होना सहज है।

इस प्रकार का विधान करने में किसी प्रकार की उप्युक्ति नहीं है कि मुक्तानंदजी ने जैसी कविता गुजराती भाषा में, जितनी सहजता और सरलता से की है, वैसी ही कविता उन्होंने हिन्दी भाषा में भी की है। भाषा में आध्यात्मिकता के साथ काव्यात्मकता सहज ही विध्यमान होती है। हिन्दी भाषा के व्याकरण से भी कवि सुपरिचित है। उसमें भी छंदों का कुशलतापूर्वक किया गया प्रयोग इस बात का परिचायक है। हिन्दी रीतिकाल के सुप्रसिद्ध आचार्य भिखारीदास ने कहा है कि **''ब्रजभाषा काव्य हेतु ब्रजमास ही न अनुमानो ऐसे ऐसे कविन की बानिहूँ सों जानिए।''** यह पंक्ति मुंक्तानंदजी की हिन्दी कविता को चरितार्थ करती है।

कविता में अलंकारों का वैविध्य पाया जाता है तो उपनाम की ताजगी भी देखते ही बनती है। बिम्बात्मकता भावों को मूर्त बनाती हैं। प्रायः सभी पदों में लय की अन्विति, उनके संगीतज्ञता को प्रमाणित करती है। स्वामीनारायण सम्प्रदाय के सिद्धांतों का आकलन कुशलता से किया गया है। कहीं पर भी उनकी कविता सांप्रदायिक दर्शन से बोझल नहीं हूई हैं। अकसर ऐसा माना जाता है कि दार्शनिक भावों का निरूपण करने वाली कविता जटिल होती है, परंतु मुक्तानंद की कविता इस प्रकार की जटिलता से मुक्त है। हिन्दी ब्रजभाषा में साकार श्री हरि का गुण सकीर्तन कर कवि ने वास्तव में भाषा को धन्यता दी हैं। गुजरात का मध्यकालीन साहित्य मुक्तानंदजी जैसे कवियों की बानी से सम्पन्न एवं समृद्ध हुआ हैं।

मुक्तानंदजी का निधन सहजानंद स्वामी के अक्षरधामवासी होने के एक मास पश्यात् गढ़डा के गोपिनाथजी मंदिर में आषाढ़ कृष्णपक्ष एकादशी सं. 1866 में हुआ था। संम्प्रदाय के ग्रंथों में सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ **''सत्संगी जीवन''** की भूमिका में मुक्तानंद स्वामी का जो जीवन चरित्र दिया गया है उसमें उनके जन्म और मृत्यु के संवत् क्रमशः 1814 तथा 1886

वि हैं। [22] मुक्तानंद काव्य में भी उनके विषय में इन्ही संवतों का उल्लेख है। [23] हम इन्हें प्रामाणिक मानते हैं। ''मुक्तानंद काव्य की भूमिका'' शास्त्री हरिजीवन दास पृ. 131 गीति काव्य के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार है-

1. ब्रह्मसूत्र भाष्य (संस्कृत)
2. निर्णय पंचक
3. धर्माख्यान (गुजराती)
4. उद्धवगीता (गुजराती)
5. सतीगीता (गुजराती)
6. धाम वर्णन चातुर्य (गुजराती)
7. गुरु चौबीसी (गुजराती)
8. कृष्ण प्रसाद (गुजराती)
9. वचनामृत (संग्रहकर्ता)
10. रुक्मिणी विवाह (गुजराती)
11. सत्संगी जीवन महात्म्य (गुजराती)
12. धर्म प्रकाश (गुजराती)
13. परमहंस माला (गुजराती)
14. पंचरत्नम् (हिन्दी)
15. सत्संग शिरोमणि (हिन्दी)
16. उत्सवामृत
17. नारायणचरितम् (हिन्दी)
18. भागवत् गीता भाषाटिका (हिन्दी)
19. विवेक चिंता मणि (हिन्दी)
20. कपिलगीता (हिन्दी)
21. अवधूत गीतम् (हिन्दी)
22. शिक्षापत्री हिन्दी पध्यात्मक
23. मुकुंदबावनी (हिन्दी)
24. वासुदेवावतार चरितम् (हिन्दी)
25. नारायण कवचम् (हिन्दी)
26. वैकुंठधाम दर्शन (हिन्दी)
27. गुण विभाग (हिन्दी)
28. नारायण गीता (हिन्दी)

सहजानंद स्वामी ने मुक्तानंदजी को भरुच के पास नर्मदा तटवर्ती तवरा गाँव को अपना स्थानापन्न बनाकर भेजा था। सूरत क्षेत्र में सम्प्रदाय के प्रचार का श्रेय अधिकतर इन्हीं को जाता है। संगीत क्षेत्र में भी उनकी रूचि अधिक थी। वीणा उनका प्रिय वाध्य था। परोपकारी के रूप में भी उनकी ख्याति हैं। अकाल के समय अथक परिश्रम करके क्षुधापीडितों की सहायता में संलग्न रहकर उन्होंने अपना स्वास्थ्य तक परोपकार में अर्पित कर दिया । सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में सहजानंद के पश्चात यदि किसी अन्य वक्ति का नाम आता है तो वे मुक्तानंद स्वामी ही हैं।

निष्कुलानंद स्वामी :

सौराष्ट्र प्रदेश के अंतर्गत हालार (देश) क्षेत्र के समीप शेखपाट गाँव में रामभाई एवं

अमृता बा नामक एक बढ़ई के घर संवत् 1766 में पुत्र रूप में इनका (निष्कुलानंद का) जन्म हुआ था। माता पिता इन्हें लालजी कहकर बूलाते थे। इन्होंने संप्रदाय की दीक्षा मांगरोल के निकटस्थ भोजगाँव में उद्धव सम्प्रदाय मंदिर के गादीपति आत्मानंद स्वामी के शिष्य रामानंद से प्राप्त की। तत्पश्यात वे निष्कुलानंद के नाम से प्रख्यात हुए ।

माता पिता के वैष्णव होने का प्रभाव लालाजी पर भी पड़ा। बाल्यकाल से ही इनकी मनोवृत्ति वैराग्य और अनासक्ति की ओर विशेष रही । बचपन में ही माता पिता ने इनका विवाह कंकूबा[24] के साथ कर दिया था।

लालाजी साधु की दीक्षा ग्रहण करने के प्रार्थी थे, किन्तु रामानंद स्वामी ने इन्हें गृहस्थ की वैष्णवी दीक्षा दी। रामानंद स्वामी ने ही उन्हें लोजपुर जाकर स्वामी सहजानंद के दर्शन करने की आज्ञा दी थी और कहा की नीलकंठ वर्णी नारायण के अवतार है। वे रामानंद स्वामी के निकटस्थ व्यक्ति थे और उनको भगवान मान कर उनकी भक्ति किया करते थें, यह रामानंद स्वामी द्वारा आयोजित सहजानंद स्वामी के गद्दी अभिषेक के अवसर पर, तथा रामानंद स्वामी के अक्षरधाम वासी होने के पश्चात उनकी तेरहवीं के अवसर पर लालजी का वहाँ उपस्थित रहना प्रमाणित करता हैं। रामानंद स्वामी ने लालाजी से सहजानंदजी का परिचय देते हुए कहा कि यह वर्णी मुझसे भी अधिक महान है, वर्णी के वेश में नारायण स्वयं अवतरित हुये हैं।

सहजानंद स्वामी के सम्पर्क में लालजी सुथार प्रायः आते रहते थे। सं. 1860 में सहजानंद स्वामी ने शेरवपाट गाँव में एक मास रहकर माघ सुदी पंचमी को वसंतोत्सव करने के पश्चात् वहां से कच्छ जाने की इच्छा प्रकट की। [25] मार्ग निर्जन और बीहड होने के कारण उन्होंने लालजी से किसी मार्ग-दर्शक व्यक्ति की खौज करने को कहा, जिस पर लालजी स्वयं साथ जाकर उन्हें कच्छ तक भेज आने को तैयार हो गये। इसी यात्रा में लालजी को साधु बनने की दीक्षा देने के लिए सहजानंद जी ने एक युक्ति की, लालजी ने मार्ग के लिए थोड़ी भोजन सामग्री तथा जल अपने साथ ले लिया । डाकुओं के भय से अपने जूतों में कुछ द्रव्य भी छिपा ली और सहजानंद स्वामी के साथ प्रसन्न चित होकर चल पड़े । अधिक दूर नहीं पहोंचे थे के मार्ग में एक भिखारी के मिलने पर सहजानंद स्वामी की आज्ञा से भोजन की सब सामग्री एवं जल उस भिखारी को दे दिया थोड़ी दूर और चलने पर उन्हें डाकुओं

की टोली मिली डाकुओं द्वारा तलाशी करने पर डाकुओं को कुछ प्राप्त नहीं हुआ तभी सहजानंदजी ने डाकुंओं को यह कहकर कि-''डाकू होकर भी सम्पत्ति खोजना नहीं आता'' धीरे से लालजी के जूतों में छिपे द्रव्य की ओर संकेत किया और डाकू उस द्रव्य को लेकर चले गये [26] अब उनके पास न तो भोजन की कोई सामग्री, जल था, न हीं द्रव्य था जो कुछ था वह सब ही चला गया इससे खिन्न मन लालजी को कुछ दूर चलने पर प्यास लगी। परंतु मार्ग में न जल का प्रबन्ध था न भोजन का । कुछ दूर चलने पर लालजी भयंकर तृष्णा से पीड़ित हो कर अचेत होने की स्थिति में आ गये तो तब सहजानंद स्वामी ने उन्हें रेत में जल के दर्शन कराये और तृष्णा शांत कर लेने को कहा। लालजी को रेत में मीठा जल देखकर अत्यंत विस्मय हुआ, किन्तु उन्होंने पहले अपनी तृष्णा शांत की। चलते चलते किसी प्रकार उस मेरूखण्ड का अंत आया। दोनों थक गये थे। एक वृक्ष की छांह में सहजानंद स्वामी ने विश्राम कर लेने को कहा, और लेटगये । लालजी उनके चरण दबाने लगे। चरण दबाते समय उन्होंने सहजानंद स्वामी के चरणतल में षोडश चिह्न देखे जिससे उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया कि वे साक्षात् नारायण के अवतार है ।[27]

वहां से चलने के बाद वे आधोई गाँव पहुँचे जहां सहजांद स्वामी को क्षुधा अनुभव हुई। उन्होंने लालजी को भोजन का प्रबन्ध करने को कहा, किन्तु लालजी ने कहा कि सब भोजन सामग्री और द्रव्य तो उन्होंने ही मार्ग में दूसरों को दिला दी थी, अब वह भोजन का क्या प्रबन्ध करें। सहजानंद स्वामी ने उन्हें गांव में जाकर भिक्षा मांग लाने का आदेश दिया किन्तु लालजी ने बताया कि उस गांव में अनेक लोग लालजी को पहचानते हैं जिसके कारण वहां जाकर भिक्षा मांगना उनके लिए संभव नहीं हो सकता है। तब सहजानंद स्वामी ने कहा कि वे इस प्रकार लालजी का वेश परिवर्तिन कर देंगे कि कोई उन्हें पहचान नहीं सकेगा। यह कहकर उन्होंने लालजी की मूंछ और चोटी काट दी तथा उन्हें गेरूआ वस्त्र धारण कराकर निष्कुलानंद के नाम से भिक्षाटन के निमित्त भेजा। [28]

भोजनोपरांत उन्होंने निष्कुलानंद को स्मरण कराया कि रामानंद स्वामी ने आवश्यकता होने पर गुहस्थाश्रम से उन्हें बुला लेने की जो बात कही थी आज उसी का समय आ गया है।[29] यह सुनकर निष्कुलानंद ने भी साधु बनकर रहने की सहमति देकर सांसारिकता से खूद को दूर कर लिया ।

सहाजानंद स्वामी ने उन्हें उसी आधोई गाँव में रहकर प्रचार कार्य करने तथा यामदंड ग्रंथ की रचना करने की आज्ञा दी [30] तथा स्वयं वहा से अकेले भुज चले गये ।

निष्कुलानंद में साधु के सभी गुण थे । वे कुशल वक्ता थे, उनके प्रवचन से प्रभावित होकर कई लोग सत्संग में जूड गये थे। उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य उनकी अप्रतिम कविप्रतिभा थी।

'मनगंजन', 'हरिविचरण', 'गुणग्राहक', 'हरिचिंतामणी' आदि विशेष उल्लेखनीय रचनाएँ है। 'मनगंजन' में सांगरूपक के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि शरीर एक नगर है, जीव उस नगर का राजा है, निजमन और प्रतिकूल मन दोनों उस राजा के प्रधान परामर्शक है। अंत में शील, संतोष, विवेक आदि से अन्नत परिष्कृत ऐसे विजमन की विजय का प्रतिपादन किया गया है।

'गुणग्राहक' ग्रंथ में निष्कुलानंद स्वामी ने मनुष्य को अपने अंदर सदगुणों का विकास करने पर बल दिया है, क्योंकि इश्वर सदगुणों से प्रसन्न होते हैं।

'हरिविचरण' ग्रंथ में मोक्ष प्रप्ति के प्रधान व सरल साधन के रूपमें भगवान नाम श्रवण, स्मरण ध्यान और भगवान चरित्र का गान बताया गया है। इस में श्री हरि के प्रति की गई विनय एवं भक्तिपूर्ण प्रार्थनाओं का संकलन है।

'चिह्नचिंतामणी' में इश्वर को पूजा के समय समर्पित किए जानेवाले फूलों का वर्णन किया गया है।

निष्कुलानंद स्वामी ने अपने जीवन चरित्र का वितरण 'भक्ति चिंतामणि' ग्रंथ के प्रकरण 54, 55 तथा 134 में दिये है जिनके आधार पर उनके जीवन की घटनाएँ प्रामणिक मानी जा सकती है। हरिलीलामृत के कलश 5, विश्राम 21, 22 में भी उन्होंने अपने जीवन प्रसंगों का उल्लेख किया है।

निष्कुलानंद स्वामी के जन्म-मृत्यु के संवत सम्बन्धी विवरण के विषय में गुजराती के इतिहासकरों में डॉ. धीरुभाई ठाकर ने उनका समय सन् 1766 से 1848 इं. माना हैं। [31] कनैयालाल मुंशी ने सन् 1821 में उनका जीवित होना लिखा है। [32] कृष्ण लाल मोहनलाल झवेरी ने भी मुंशी के कथन की ही पुनरावृत्ति की है। [33] हमने निष्कुलानंद काव्य में दिये गये समय को ही उनका प्रामाणिक जीवनकाल स्वीकार किया है।

प्रेमानंद स्वामी : प्रेमसखी (1769-1845) :

मधुरकंठी प्रेमानंद स्वमीनारायण सम्प्रदाय के उत्कृष्ठ भक्त कवि थे। प्रेमानंद के पूर्वाश्रम का विरण अधिकारिक रूप में प्राप्त नहीं होता । इन्के जन्म एवं माता-पिता के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। इतना अवश्य ध्यातव्य हैं कि इनका कंठ बड़ा सुमधुर था, वे बाल्यकाल से गाने में निपुण थे। युवावस्था में कई वर्षो तक ये वैरागी साधु संतों के साथ पूरे देश में घूमते रहे, तत्पश्यात् घूमते घूमते वे वडोदरा जिल्ले के दोरा गाँव में आये तब स्वामी सहजानंद से इनका संपर्क हुआ [34] सहजानंद स्वामी से इन्होंने स्वमार्ग की दीक्षा प्राप्त की, और इनके अध्ययन की व्यवस्था करदी। सहजानंद स्वामी ब्रह्मानंद को सखा एवं प्रेमानंद को प्रेमसखी कहकर संबोधित करते थे ।

प्रेमानंद स्वामी छोटे कद के स्वस्थ्य, सुरूप और गौरवर्ण के व्यक्ति थे। सत्संग में मुक्तानंद एवं ब्रह्मानंद स्वामी से स्वच्छन्दतापूर्वक मुक्त हृदय से वे बातें किया करते थे। सभी से उनका स्नेह भाव रहता था। सहजानंद स्वयं उनकी भक्तिभाव पूर्ण निष्कपट श्रद्धा से अत्यंत संतुष्ट थे। सहजानंद स्वामी उनसे भजन सुनाने को भी कहते थे । [35] गढ़ड़ा में एक बार प्रेमानंद ने सहजानंद स्वामी को अपनी एक रचना **''वंदु श्री सहजानंद रस रूप अनुपम सार ने, रे लौल''** सुनाई थी जिसे सुनकर सहजानंद स्वामी ने कहा था -

''जिसे इस प्रकार निंरतर इश्वर का स्मरण होता हैं, उसके मातापिता को धन्य है, और हमको तो ऐसा लगता है कि यदि उठकर इनकी दण्डवत करें तो भी कम है। [36] कनैयालाल मुंशी इन्हें इस सम्प्रदाय का महान कवि मानते है। वे कहते है कि -

''विपुल एवं उत्कृष्ट भक्ति साहित्य की दृष्टि से प्रेमानंद स्वामी स्वामीनारायण सम्प्रदाय के महान कवि है। इतनाही नहीं बल्कि नरसिंह महेता के बाद के मध्यकालीन साहित्य में यदि किसी के काव्यों में शुद्ध भक्ति का प्रकार दिखाई देता है तो इस प्रेमानंद में ।'' उत्कट एवं शुद्ध भक्तिभाव तथा विपुल पद रचना के आधार पर इनको सम्प्रदाय के अष्ट कवियो में स्थान प्राप्त हुआ । प्रेमानंद को पृष्टिमार्गीय भक्त कवि दयाराम के समकालीन माना जाता है, दयाराम कवि के भाँति मधुर कंठ से शास्त्रीय एवं सुगम दोंनों हीं पध्दति से गान करते थे, और अपने भक्तों को, श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। सहजानंद स्वामी ने उनसे, गृहस्थों में प्रचलित मंगल अवसरों पर गीत गाने की प्रथा के अनुसार स्त्रियों के लिए गीतों-

पदों आदि की रचना करने को भी कहा था, क्योंकि एकबार स्वयं सहजानंद स्वामी किसी के विवाह में सम्मिलित हुये थे जहां उन्होंने स्त्रियों को अश्लील गीत गाते सुना था। उनकी प्रेमलक्षणा भक्ति की प्रशंसा में यह भी कहा करते थे कि व्रज की गोपिका को भी मात करें ऐसी भक्ति प्रेमानंद की ही है। [37]

प्रेमानंद को शुद्ध भक्ति के उद्‌गारों के कारण उच्चकोटि का भक्त कहा जाता है। ये अपने आप को कृष्णका रसिया बताते थे। इनके **''हो रसीया में तो शरण तिहारी, मैं तो बिरद भरोंसे बहुनामी''** एवं **''बिसर न जाओ मेरे मित''** इतने सुन्दर हैं कि गांधीजी की ''आश्रम भजनावली'' में भी इनको स्थान मिला है। इनकी उत्कृष्ट भक्ति भात को देखकर श्रीजी महाराजने प्रेमानंद को परमहंस की गौरवपूर्ण उपाधि प्रदान की थी।

सम्प्रदाय के अन्य कवियों के संपर्क से तथा परिवेश से और घुमक्कड जीवन से अनेक भाषाओं के मर्मज्ञ बने थे उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था। उन्होंने ब्रजभाषा एवं पंजाबी तथा मारवाड़ी मैं भी ललित पद रचना की हैं यधपि पद्यपि पंजाबी तथा मारवाड़ी के पदों की संख्या अधिक नहीं है। ब्रजभाषा में उन्होंने सहस्त्रों पदों की रनचा की हैं [38] पदों के अतिरिक्त उनकी अन्य 7 रचनाएँ भी प्राप्त है।

ब्रह्मानंद :

सन् 1772 में आबू की तलहटी में डुंगरपुर के रवाण नामक गाँव में लाडु बारोट का जन्म हुआ था। उनके पिता शंभुदान गढ़वी और माता लालबा देवी दोनों ही धार्मिक भाव रखते थे, सदाचारी थे। परिणाम स्वरूप यही संस्कार एवं धार्मिक वृत्ति लाडु बारोट के पूर्ण चरित्र में परिदर्शित होती दिखाई देती है। सं. 1861 में सिद्धपुर के मार्ग में ढ़ंढाव्य देश के अन्तर्गत जेरीता गांव में सहजानंद स्वामी ने इन्हें दीक्षा और रंगदास नाम दिया था। [39] स्वामी सहजानंदने इन्हें नित्य 4 पद रचने की आज्ञा दी थी। गढ़डा के मंदिर में रंगदास रहते और नित्य सायंकाल आरती के पश्यात् अपने मेघ गंभीर गायन से अपने भक्तों के हृदय कमल खिलाया करते थे। वे सहजानंद स्वामी के अनन्य शिष्यों में से थे, और कहा जाता है कि सम्पूर्ण सत्संग में केवल यही एक ऐसे व्यक्ति थे जो सहजानंद स्वामी के साथ मित्रवत् वार्तालाप किया करते थे । इनमें जो प्रतिभा थी उसको उन्मेषित करने में कच्छ भुज की व्रजभाषा पाठशाला का महत्वपूर्ण योगदान है। उदयपुर के के महाराजने बालक लाडू बारोट

की कविता से प्रभावित हो कर काव्य शास्त्र में अधिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु उन्हें लखपतसिंह द्वारा निर्मित ब्रजभाषा पाठशाला में अध्यनार्थ भेज दिया [40] लगभग आठ वर्ष तक काव्यशास्त्र, पिंगलशास्त्र एवं कविताओं का अध्ययन कर एक प्रखर कवि के रूप में सबके सामने आये ।

संवत् 1861 में कालवनी में सहजानंद स्वामी ने अपने प्रमुख भक्त एवं अनुयायियों को परमहंस की दीक्षा दी और रंगदास को ब्रह्मानंद नाम दिया तभी से ब्रह्मानंद स्वामी सम्प्रदाय के एक मूर्धन्य भक्त कवि के रूप में विख्यात हुए । ब्रह्मानंद स्वामी ने हृदय की गहराई से स्वेच्छापूर्वक साधु जीवन स्वीकार किया था। अतः उन्होंने एक आदर्श साधु के रूप में भी सत्संग में यश प्राप्त किया है। वे सधर्म के प्रचारार्थ भी जाया करते थे। उन दिनों गुजरात में सभी तरह की अराजकता फैली हुई थी। अनेक हथियार बंध साधु लूट खसोट के काममें लगे रहते थे तथा वे सत्संग के साधुओं को नाना प्रकार से पीड़ित किया करते थे। ब्रह्मानंद स्वामी भी अनेक बार उनकी दृष्टता का लक्ष्य बने थे। एक बार ब्रह्मानंद को खूब पीटा गया; मारनेवाले की लाठी टूट गई । ब्रह्मानंद ने उसकी लाठी टूटने से होने वाली क्षति पर दुःख प्रगट किया था, क्योंकि अपरोक्ष रूप में उनके शरीर से अन्य व्यक्ति की हानि संभव हुई थी।

ब्रह्मानंद स्वामी के साधु होने के बाद उनके सम्बन्धी गणों ने उन्हें फिर पूर्वाश्रम में ले जाने का अथक प्रयत्न किया था। बड़ौदा के राजा सयाजीराव ने कहा था कि यदि ब्रह्मानंद उनके दरबार में राजकवि होकर रहें तो उन्हें पच्चीस हज़ार रूपये की आय का ताल्लुका वे प्रदान कर सकते हैं किन्तु ब्रह्मानंद स्वामी सांसारिक प्रलोभनों से बहुत ऊपर उठ चुके थे ।[41] ब्रह्मानंद स्वामी की स्मरणशक्ति अत्यंत तीव्र थी । उनके चारित्रिक गुणों, भक्ति, मेघा आदि से प्रभावित होकर सहजानंद स्वामी ने उनकी नियुक्ति सदगुरुओं में की थी। जो काम ब्रह्मानंद को सोंपा जाता वह काम वे बड़ी लगन से करते थे इसलिए सहजानंद स्वामी ब्रह्मानंद को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सोंपा करते थे । अहमदाबाद में श्री नरनारायण देव का मंदिर बनवाने का कार्य, वडताल का मंदिर बनवानेका का कार्य तथा जूनागढ़ में मंदिर बनावाने का कार्य ब्रह्मानंदजी को ही सोंपा गया था । जूनागढ़ का मंदिर उन्होंने सं.1884 में बनवाकर पूर्ण किया ।[42]

ब्रह्मानंद स्वामी का जीवन उच्चादर्शो से निर्मित अत्यंत व्यस्त जीवन था। वे अपने

नित्य और नैमित्तिक कार्यो के पश्यात अथक परिश्रम करते हुये रात्रि में समय निकालकर ग्रंथ रचना किया करते थे । पदों की रचना तो वे अत्यत संकटपूर्ण परिस्थितियों में भी कर लेते थे। स्वामीनारायण सम्प्रदाय के श्रेष्ठ कवियों में उनको अग्रगण्य स्थान प्राप्त है। ब्रहमानंद स्वामी ने ब्रजभाषा, कच्छी, चारणी, राजस्थानी तथा गुजराती में विविध रचनाएँ की है। इन भाषाओं में लगभग 8000 पदों के अतिरिक्त हिन्दी में उन्होंने 10 ग्रंथों की भी रचना की है जो इस प्रकार है।

1. संम्प्रदाय प्रदीप (1हिन्दी)
2. सुमति प्रकाश
3. नीति प्रकाश
4. उपदेश रत्नदीपक झूलना (हिन्दी)
5. धर्मवंश प्रकाश
6. विवेक चिंतामणि (हिन्दी)
7. उपदेश चिंतामणी (हिन्दी)
8. वर्तमान विवेक (हिन्दी)
9. शिक्षा पत्री पद्यात्मक (हिन्दी)
10. ब्रम्हविलास (हिन्दी)

इसके अतिरिक्त गुजराती भाषा में उनके पांच ग्रंथ और भी हैं

1. श्री नारायण गीता
2. सतीगीता
3. धर्म सिद्धांत
4. शिक्षापत्री पद्यात्मक
5. छन्दरत्नावली

ब्रह्मानंद स्वामी के मृत्यु के विषय में जो भी जानकारी हमें प्राप्त होती है, उसके अन्तर्गत अनेक विद्वानों ने अपने अपने मत प्रस्तुत किये है ऐसी स्थिति में हमे ब्रह्मानंद काव्य में दिये गये संवतो को ही प्रामाणिक मानना तर्कसंगत लगता है।

भुमानंद स्वामी :

वैशाख सुदी सप्तमी, रविवार, सं. 1852, को हालार देश में जामनगर राज्य -स्थित के सिया गाँव के निवासी रामजी भाई राठौर और माता कुँवर बाई के घर में भुमानंद स्वामी का जन्म हुआ था। वे रामजी भाई की तीसरी संतान थे। इनके दो बड़े भाई जीवाभाई तथा आंबाभाई थे तथा इनसे छोटे भाई का नाम पांचाभाई था। पूर्वाश्रम में भूमानंद स्वामी रुपजी भाई के नाम से जाने जाते थे। बाल्यावस्था से ही इन पर तथा उनके भाइओं पर वैष्णव संस्कारों का सुप्रभाव पड़ा था। इनके माता-पिता सहजानंद स्वामी के परम भक्त थे। वे

सहजानंद स्वामी को साक्षात परमेश्वर का अवतार मानते थे और उनकी आराधना करते। रूपजी बाल्यकाल से अन्य भाइयों की अपेक्षाकृत अधिक भक्तिभाव सम्पन्न थे।

एक दिन अपने पिता के साथ रूपजी गांव में भागवत की कथा सुनने गये, जहां पुरुष और स्त्रियों को साथ-साथ बैठने का प्रबंध था। रूपजी को यह बात पसंद नहीं आई। इस पर उनके पिताजी ने उन्हें बताया कि इस समय तुम्हारे विचारों से मिलता-जुलता एक जीवन्मुक्त का सम्प्रदाय है जिसे स्वामीनारायम सम्प्रदाय कहते है। तभी इन्हें इस सम्प्रदाय के प्रति जिज्ञासा हुई और उन्होंने अपने पिता से तत्सम्बधी अनेक प्रश्न पूछे। प्राय पिता-पुत्र में अवकाश के अवसर पर सहजानंद स्वामी से संबंधित वार्ता हुआ करती थी।

पिता के स्वर्गवास के पश्चात कुटुंब का पूरा भार इनके बड़े भाई पर आ पड़ा। जीवाभाई वहां से अपने समस्त परिवार सहित जीरागढ़ चले गये और वहीं निवास करने लगे। उस समय रूपजी की आयु 14 वर्ष की थी, उन्होंने वरघरी गाँव में एक बनिये के यहाँ नौकरी कर ली। उस बनिये से तीन वर्ष बाद, जब रूपजी भाई ने अपना वेतन मांगा तो उसने असत्य बोलकर रुपये दे चुकने की बात कही। कहा जाता है कि अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए 17 वर्ष की आयु में रूपजी भाई को पंचों के कहने से लोहे की लाल की हुई गरम सांक़ल अपने गले में पहन नी पड़ी, किन्तु उन्हें किसी भी प्रकार की हानी न हुई।

वहां से वे कच्छ गये जहाँ गंगाराम मल्ल से उनकी भेंट हुई। गंगाराम मल्ल स्वामीनारायण के परम भक्त थे। उनके साथ 6 वर्ष के लंबे सहवास के कारण रुपजीभाई की सहजानंद स्वामी में श्रद्धा अत्यंत पुष्ट हो गई। मूल स्वभाव से वैराग्य प्राप्त रुपजी भाई ने अत्यंत कठोरतापूर्वक विवाह संबंध में बंधे रहने से इनकार कर दिया। अतः वे यों ही भ्रमण करते रहे। भुज से राजकोट, राजकोट से बांकानेर, मूली होते हुये बढ़वान के पास खाखा गाँव में आये। गांव से बाहर एक तालाब था वही पर वे रहने लगे। खाखा निवासी धनाराबा नामक व्यक्ति उनका हितैषी बन गया और वही रूपजी को एक बार अपने साथ गढ़ढ़ा ले गया, जहां लक्ष्मीवाडी को जाते समय सहजानंद स्वामी का मार्ग में रुपजीभाई ने दर्शन किया। सहजानंद स्वामी को देखते ही रूपजी ने अपना रचा हुआ पद गायाः

"सर्व सखी जीवन जीवाने चालों रे।"

यह सुनकर सहजानंदजी ने उन्हें अपने पास बुलाया। और अपने साथ ले जाकर

लक्ष्मीवाडी की सभा में बैठाया। वहीं एक आम के वृक्ष के नीचे उन्हें दीक्षा देकर भूधरानंद ब्रह्मचारी बना दिया।[43]

इनके द्वारा रचित पद सहजानंद को बहुत पसंद थे- उन्होंने जब देखा कि पदों में भूधरानंद नाम लिखने में कवि को कठिनाई होती है तब भूधरानंद से उन्होंने इनका नाम बदलकर भूमानंद रख दिया।[44]

इनके कीर्तनों का संग्रह **''भूमानंद कीर्तन''** के नाम से वड़ताल के स्वामीनारायण मंदिर के पुस्तकालय में सुरक्षित है। उसमें उनके समस्त पद गुजराती भाषा में ही लिखे गये संग्रहीत है। इसके अतिरिक्त इनके अन्य चार ग्रंथ का उल्लेख प्राप्त होता है-

1. श्री वासुदेव माहात्म्य (हिन्दी)
2. पंचम स्कंध (हिन्दी)
3. दशम स्कंध (हिन्दी)
4. घनश्याम लीलामृत सागर (गुजराती)[45]

उनकी हिन्दी रचनाओं में केवल श्री वासुदेव महात्म्य ही प्राप्य है, अन्य रचनाओं ''दशम स्कंध'' और ''पंचम स्कंध'' अभी तक अप्राप्य है। कई लोगों से यह पता चला है कि उक्त दोनों ग्रंथ प्रकीर्ण पदों में भूमानंद स्वामी ने रचे थे।

भूमानंद स्वामी स्वभाव से गंभीर, शांत एवं तपोनिष्ठ थे। उनके स्वभाव की इन्हीं विशिष्टताओं को देख सहजानंद स्वामी ने उन्हें गाँव गाँव प्रचार करने हेतु नियुक्त किया था। इस प्रचार कार्य में अनेक विपत्तियों का उन्हें सामना करना पड़ा किन्तु वे अपने ध्येय से विचलित नहीं हुए। व्रत उपवास कर उन्होंने अपने शरीर को सुखा डाला था। शरीर की अशक्तता को उन्होंने अपने कार्य में बाधक बनने नहीं दिया। निरंतर अपने कर्तव्य की ओर कार्यरत रहे। सत्संग में उनका बड़ा नाम था, लोग उन्हें बड़े आदर से देखते थे। 72 वर्ष की वृद्धावस्था में भी यह प्रचार कार्य में नित्य थे और प्रचार सम्बन्धी प्रवास में ही रविवार माह वदी 8, सं. 1924 के 2 बजे वाणसा नामक गाँव में उन्होंने अपनी इह लीला समाप्त की।[46]

अविनाशानंद स्वामी :

इनका जन्म सं. 1890 में वीरमगांव निवासी वीसलनगरा नागर ब्राह्मण भवानी शंकर

के घर में हुआ था। इनकी माता का नाम यमुनाबाई तथा इनका पूर्वाश्रम का नाम मोतीलाल था।

बाल्यावस्था में उन्हें मेहता की पाठशाला तथा बाद में अहमदाबाद के पं. बापू शास्त्री के पास संस्कृत पढ़ने के लिए रखा गया था। इनका पूरा परिवार अहमदाबाद में ही स्थायी था। विद्यार्थी जीवन में ही वे एक बार घर की किसी छोटी सी घटना से अप्रसन्न होकर अहमदाबाद के समीप जेतलपुर चले गये। वहाँ उस समय आनंदानंद स्वामी मंडलेश्वर थे। जेतलपुर में ही इनके माता की चाची गंगाबाई रहती थी। वहाँ से इनके वहाँ पर होने के समाचार प्राप्त होने पर इनकी माता उन्हें वहां से ले आई। जेतलपुर में केवल दस दिन ही वे आनंदानंद स्वामी के पास रहे थे किन्तु उस अल्पकाल के सहवास से ही उन्हें तीव्र वैराग्य हो गया था। आगे चलकर घर में उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया, किन्तु विवाह करने से उन्होंने स्पष्ट इनकार कर दिया। तब घरवालों ने उन्हें अहमदाबाद की गद्दी के प्रथम आचार्य अयोध्याप्रसाद महाराज के पास ले जाकर उनके आश्रम में सोंप दिया। पिता भवानीशंकर सहजानंद स्वामी के समय से परिवार सत्संगी थे तथा उन्होंने स्वयं स्वामीनारायण सम्प्रदाय की दीक्षा ली थी।

आचार्य अयोध्याप्रसाद महाराज ने सं. 1906 में इन्हें दीक्षा देकर सत्संग में ब्रह्मचारी का स्थान दिया था। [47] उन्होंने ही इनका नाम मोतीलाल से बदलकर अविनाशानंद रखा और उनकी काव्य में रुचि देखकर उन्हें भुज की ब्रजभाषा पाठशाला में काव्य शिक्षा के लिए भेजा था। [48] यहाँ पर अविनाशानंद स्वामी ने 5 वर्ष काव्य शास्त्रों का अनुशीलन किया। तदुपरांत आचार्य अयोध्याप्रसाद उन्हें अपने साथ छपैया ले गये तथा अन्य प्रासंगिक बातें बताकर उनसे ''छपैया महात्म्य'' नामक रचना लिखवाई। [49]

अविनाशानंद स्वामी की दिनचर्या साधुओं के लिए कही गई दिनचर्या अनुसार रहती थी। वे आचार- विचार पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे एवं स्वधर्म के नियमों का पूरी तरह पालन करते थे। उन्हें मंदिरों से पैसा एकत्र करने का काम सौंपा गया था। अतः अहमदाबाद गद्दी के आधीन मंदिरों में जाकर वे यह कार्य सम्पन्न किया करते थे।

अविनाशानंद वचनामृत की कथा भी नैमित्तिक रूप से करते थे। उनका जीवन अत्यंत व्यस्त था, तो भी अपने नियमित कार्यो से अवकाश के समय वे काव्य रचना में लीन

हो जाते थे। इसके लिए उनके पास एक स्लेट सदा रहती थी और रचना, कीर्तन के पद आदि स्लेटसे स्वयं ही पक्की स्याहीं से कागज़ पर उतार लिया करते थे। अपने नए पदों को वे संध्या आरती में स्वयं ही गया भी करते थे।

अविनाशानंद स्वामी का स्वभाव उग्र था। वे स्वास्थ्य में ब्रह्मानंद स्वामी की तरह हृष्ट पुष्ट और वैराग्य में निष्कुलानंद स्वामी की तरह आदर्श व्यक्ति माने जाते थे। यदि किसी सत्संगी से वे कभी शिक्षापत्री के नियम का उल्लंघन होते देखते तो अत्यंत क्षुब्ध होकर उसकी मर्त्सना करते थे।

अविनाशानंद स्वामी ने सत्संग में रहकर ग्रंथों तथा स्फूट पदों की रचना की। उन्होंने भुज में हिन्दी (ब्रजभाषा) भी सीखी थी तथा छपैया भी गये थे जहाँ उन्हें अवधी का ज्ञान प्राप्त हुआ था। उनकी रचना ''छपैय्या महात्म्य'' से प्रकट होता है कि उन्होंने तुलसीकृत ''रामचरित मानस'' का भी पाठ किया था। उनकी रचनाएँ इस प्रकार है -

1. केशव दिग्विजय
2. अवध विरह (हिन्दी)
3. लांगणज लीला
4. पद्यवद्ध वचनामृत
5. हरिलीला सिंधु
6. कवित्त रामायण
7. छपैय्या महात्म्य (हिन्दी)
8. प्रकीर्ण पद

इनके अतिरिक्त भी कुछ रचनाओं का निर्माण अविनाशानंद द्वारा हुआ था लेकिन वह प्राप्त नहीं होती। माधवलाल दलसुखलाल कोठारी का अनुमान है कि कदाचित् इन ग्रंथों की रचना उन्होंने ब्रजभाषा पाठशाला भुज में अध्ययन करते समय की हो।[50]

आचार्य अयोध्याप्रसाद के पश्चात आचार्य केशवप्रसाद के व्यवहार से असंतुष्ट हो कर अविनाशानंद माणसा के मंदिर में चले गये थे और वहां कुछ समय तक महंत भी रहे। किन्तु माणसा के सत्संगी नरसीभाई के साथ भी उनकी नहीं बनी, अतः महंत पद को त्याग कर माणसा के समीपस्थ मक्काखाड नामक गांव में रहने लगे। मक्कारवाड़ में उन्होंने अपने प्रयत्न से मंदिर बनवाना भी आरंभ किया किन्तु मंदिर अधूरा ही था; तभी फिर किसी व्यक्ति से असंतुष्ट होकर वे उस स्थान को भी छोड़कर माणेकपुर चले गये। माणेकपुर में वे काफी समय तक रहे। **लागंणज लीला** की रचना उन्होंने गुजराती भाषा में सं. 1935 में वहीं पूर्ण की थी। उन्होंने ग्रंथ के 28 वें अध्याय के अंत में लिखा है-

संवत ओगणी छत्रीसो वलि श्रावण मास अनूप।

राघव छठ गुरुनासरे करयो पुरण ग्रंथ सरूप॥

तत्पश्चात् वे वरसोडा रहने लगे। वही वरसोडा मैं ही अविनाशानंद का निधन हुआ था।[51] यह अनुमनित है। वरसोडा में झाझरी नदी के तट पर अविनाशानंद स्वामी का चोरा बना हुआ था।

वैष्णव सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों की भांति, स्वामीनारायण सम्प्रदाय में उपरोक्त मुक्तानंद, निष्कुलानंद, ब्रह्मानंद, प्रेमानंद, भुमानंद, अविनाशानंद के साथ अन्य दो संत कवि देवानंद तथा मंजुकेशानंद का भी समावेश होता है।

देवानंद स्वामी - इनके द्वारा अधिकतर गरबी की रचना हुई है।[52] इसके पद स्त्री वर्ग तथा सामान्य फकीरों को अधिक प्रिय थे और उनके मुख से अधिक बोले जाते थे। इन्होंने इस संसार में मृत्यु को सत्य एवं अनिवार्य माना है इसलिए दुन्यवी मोहमाया को त्याग कर ईश्वर से प्रेम-अनुराग करने की बात बताई है। श्री मशरुवाला के शब्दों में-

कर प्रभु संगाथे दृढ़ प्रीतड़ी रे,

मरी जावुं मेली धनमाल,

अंतकाले सगुं नहिं कोई तुं रे।[53]

इन्होंने भी ब्रजभाषा पाठशाला में काव्यशास्त्र की विधिवत् शिक्षा ली थी।

मंजुकेशानंद

मंजुकेशानंद ने अपनी रचनाएँ वैराग्य के विषय को लेकर लिखी है। हालांकि उनके अधिकतर साहित्य को प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हुई। इनकी रचनाओं में गुरु (सहजानंद) के प्रति उत्कट प्रेम प्रदर्शित होता है।[54]

तमारे चरणे शिश नमावुं,

सहजानंदजी, प्रेम गुण तमारा गावुं॥ [55]

इसके साथ अनितिमान गुरु के प्रति अपना रोष प्रगट करते हुए समाजके सामने एसे पाखंडी गुरुओं के पाखंड को खूला किया है-

''एम कही परनारी संग करे,

चेलातणुं द्रव्य हरे

तेनु पाप हैयामा न धरे॥'' [56]

स्वामीनारायण सम्प्रदास का साहित्य (रचनाएँ) :

शिक्षापत्री :

माघ शुक्ल पंचमी, संवत् 1882 विक्रमी को गुजराती भाषा में सहजानंद स्वामी ने सम्प्रदाय के मूल ग्रंथ के रूप में ''शिक्षापत्री'' नामक ग्रंथ की रचना की।[57] इसके अंतर्गत उन्होंने सत्संगियों को संबोधित करके अपने सम्प्रदाय का संविधान लिखा है। इसमें कुल 212 निर्देश है। कवि ने उसी के आधार पर उन्हीं आदेशों को पद्यात्मक रूप में लिखा है। यह सम्प्रदाय के दर्शनसिद्धांत, इतिहास, आचार-विचार, भक्ति तथा कर्मकाण्ड की परिचयात्मक रचना है। सहजानंद स्वामी की आज्ञा से मुक्तानंदस्वामी ने इसे हिन्दी भाषा में पद्यबद्ध किया है। जिस प्रकार सहजानंद स्वामी ने गुजराती गद्य में लिखा था उसी शैली में हिन्दी में इसे पदबद्ध किया गया है। यह रचना सत्संगियों में नित्यपाठ का ग्रंथ है। इस रचना के आरंभ के तीन दोहों में मंगलाचरण समाप्त कर शिक्षापत्री आरंभ की गई है। इस के अंतर्गत दोहा, चौपाई तथा सौरठा छंद प्रयुक्त हुये हैं। ''शिक्षापत्री'' में धर्म और धार्मिक प्रवृत्तियों पर अधिक बंद दिया गया है।[58] इसके अंतर्गत धर्म और उसकी प्रवृत्तियों के विषय में स्वंय भगवान स्वामीनारायण ने अपने आश्रितों के लिए स्पष्ट और महत्वपूर्ण निर्देश दिये हैं। उसके पालन के लिए भी पूरा आग्रह किया है। इसमें श्री हरि जी ने सारे धर्मशास्त्रों का सार संक्षेप रूप में देकर परम कृपा और करुणा के साथ ममतापूर्वक सामान्य और विशेष धर्मो का निरूपण किया है। स्वयं श्रीजी महाराज ने कहा है-

इति संक्षेपतो धर्माः सर्वेषां लिखीता मया।
साम्प्रदायिक ग्रन्थेभ्यो ज्ञेय एषां तु विस्तरः॥
सच्छास्त्राणां समृद्धृत्य सर्वेषा सारमात्मना।
पत्रीयं लिखीता नृणामभीष्टकलदायिनी॥

सत्संग शिरोमणि :

इसके रचनाकार मुक्तानंद स्वामी है। इसका रचनाकाल संवत् 1875 वि. है। इस

रचना में सहजानंद स्वामी तथा उनके शिष्यों के प्रश्न-उत्तरों का समावेश है। मुक्तानंदजी ने स्वयं प्रश्न किया है कि किसी व्यक्ति में सत्संग करने पर भी दोष-बुद्धि क्यों उत्पन्न हो जाती है ? [59] उसका उत्तर सहजानंद स्वामी ने द्वितीय अध्याय में देते हुए कहा [60] संत्सग करने की विधि सम्प्रदाय के अनुसार बताई गई है-

प्रश्न कीन तुम अधिक विचारी। मम आश्रितहि आधिक सुखकारी॥
अब याको उत्तर सुनु बीरा॥ सुनत गिटहि संशय भव पीरा॥2॥
ब्रह्मचर्य व्रत दृढ़ सजै, मुनिवर परमसुजान॥
देव दयानिधि तास उर, बसत सदा भगवान॥5॥
अष्ट भांति तजे नारि प्रसंगा, प्रभु पद पंकज भजत अभंग॥
कहे न सुनत बनिता की बाता, त्युं त्रिय केलि तजत दुख दाता॥6॥
निस्वादी निर्लोभ गभीरा, निःस्पृह निर्मत्सर मुनि धीरा।
इत्यादिक मुनि लछन जैहा, दैवन मंहि अति दुर्लभ तेहा॥12॥

सत्संग शिरोमणि के तृतीय अध्याय में राजा वेन तथा चतुर्थ अध्याय में सिद्धगति पाने वाले चित्रकेतु राजा की कथा है। जिसके अंतर्गत अभिमानी नृप को शिवजी का अपमान करने के कारण भवानी का शाप मिलता है जिससे वह वृत्रासुर राक्षस हुआ। [61] इसी प्रकार पंचम अध्याय में दुर्वासा-शाप तथा इंद्र-नाश की कथा, छठे अध्याय में वक्षयज्ञ-भंग की कथा, सप्तम अध्याय में अक्रूर-गुण-वर्णन, (यह कथा भागवत स्कंध 10 के अध्याय 56-57 में है।) [62] आठवें अध्याय में शरभाख्यान वर्णन है, नवे अध्याय में शिष्य की परीक्षा का वर्णन, दसवें-ग्यारवें अध्याय में च्यवन-कुशिक संवाद, 12 वें अध्याय में नारद-जन्म-कर्म-वर्णन। [63]

13 वें अध्याय में धर्माधर्म का वर्णन, 14 वें अध्याय में संत-असंत के गुणों का वर्णन, 15 वें अध्याय में गोलोक का वर्णन, 16 वें अध्याय में यमयातना का वर्णन, 17 वें अध्याय में विभिन्न व्रतों का माहात्म्य।[64]

18वें अध्याय में संत-असंत का वर्णन 19 वें अध्याय में विभिन्न स्त्रियों द्वारा पूछे गए प्रश्न तथा 20 वें अध्याय में उसके उत्तर, 21 वें तथा 22 वें अध्याय में स्त्री-दर्शन से प्राप्त मोह की कथा, 23 वें अध्याय में गृही तथा त्यागी के धर्म का विवेचन, 24 वें अध्याय में प्रायश्चितों का उल्लेख है।

इस ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर विषय-निर्देश प्राप्त होता है। यह ग्रंथ चौपाई, सौरठा, दोहा आदि छंदों में रचित है। गढपुर (दुर्ग पतन) में सं. 1575 आषाढ़ मास की चतुर्थी के दिन यह ग्रंथ संपूर्ण हुआ है।[65]

भगवद्गीता भाषा टीका :

इर रचना के रचनाकार मुक्तानंदस्वामी ने संवत् 1881 वि. में इसकी रचना की ''भगवद्गीता भाषा टीका'' इस ग्रंथ की दो प्रतियाँ उपलब्ध है। दोनों प्रतियों की कथा वस्तुतः एक ही है। संपूर्ण ग्रंथ श्री कृष्ण -अर्जुन संवाद के रूप में 18 अध्यायों में विभाजित है। इस ग्रंथ का आधार श्रीमद्भागवद है।[66] यह ग्रंथ दोहा, चौपाई, सोरठा, हरिगीत आदि छंदों में आबद्ध किया गया है।

इसमें श्रीमद्भगवद् गीता में दिये हुए अध्यायों का वृतांत निरूपित है। किन्तु इस रचनाको अनुवाद या टीका के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता, क्योंकि अनेक स्थलों पर कवि ने अत्यंत स्वतंत्र वर्णन प्रस्तुत किये हैं। यह ग्रंथ कृष्ण अर्जुन संवाद में तथा धृतराष्ट्र-संजय संवाद में लिखा गया है।

प्रथम अध्याय में पृथ्वी असुरों के सैन्यों से त्रस्त कामघेनु का रूप धारण कर ब्रह्मा के शरण में जाती है। उसके परित्राण हेतु वासुदेव द्वापर तथा कलियुग के संधिकाल में जन्म लेते हैं।[67] और श्री कृष्ण कुरुक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन का पक्षलेते हैं तथा युद्द के प्रारंभ से पहले अर्जुन दोनों सेनाओं के मध्य में रथ को ले जाने के लिए कृष्ण को कहता है तभी अपने सामने अपने स्वजनों को देख विक्षुब्ध हो जाता है।[68] तब श्री कृष्ण आत्मा और परमात्मा की व्याख्या तथा पृथकता निरूपित कर कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग युक्त आत्मा-परमात्मा के भेद को निरूपित करते हैं। इस प्रखार दूसरे अध्याय में संख्यायोग का, तृतीय में कर्मयोग का वर्णन है।

इस प्रकार पांचवें अध्याय में संन्यास योग, छठे में आत्मसंयम, सातवें में ज्ञानयोग, आठवें में महापुरुष योग, नवें में रागगुण योग, दसवें में विभूति योग, ग्यारहवें में विश्वरूप दर्शन, बारहवें में भक्तियोग, तेरहवें में क्षेत्र-अक्षेत्र निर्देशयोग, चौंदहवें में गुणत्रय विभाग योग,[69] पंद्रहवें में पुरुषोत्तम योग, सोलहवें में सुरासुर समयोग, सत्रहवें में गुण-कर्म विभाग योग तथा अठारहवें में संन्यास योग का वर्णन हैं।

प्रत्येक अध्याय के आरंभ में उसके तथा पहले के वर्ण्य विषय का उल्लेख है।[70]

त्रयादशमे अध्याय में एहा, मिलेहे परस्पर आप में जेहा।

अब चौदमें अध्या में एही, सत्वादिक तिहु गुन हे तेही॥

प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर उस अध्याय में वर्णित विषय का संक्षेप में संस्कृत में निर्देश कर दिया गया है। अठारहवें अध्याय की समाप्ति पर रचना के स्थान संवत् के बाद फलश्रुति देकर रचना संपूर्ण कर दी गई है।

इस प्रकार यह ग्रंथ भगवद् गीता पर आधारित है। यह ग्रंथ दुर्गपुर (गढ़पुर) में रहकर स्वामीनारायण की आज्ञा से रचा गया है। यह ग्रंथ संवत् 1882 अषाढ़ मास कृष्ण पक्ष की तृतीया रविवार के दिन पूरा हुआ है। सम्प्रदाय के अनुयायियों में इस रचना का पाठ प्रचलित है।

पंचरत्न : सं 1878 वि.[71] में रचित **''पंचरत्न''** की रचना मुक्तानंद स्वामी ने की है। यह ग्रंथ सोरठा, दोहा, चौपाई, में लिखा गया है। प्रारंभ में ही कवि ने इष्टदेव स्वामीनारायम की स्तुति दी है। रत्नके समान ज्ञान, ध्यान, विज्ञान, विवेक एवं वैराग्य इस ग्रंथ के तत्व साधना की दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान है। इसलिए कवि ने इसे अध्यायों में न विभाजित करते हुए इन पांच ''चिंतामणियों'' में विभाजित किया है। इन नामों से ही उनमें निरूपित विषय का बोध होता है जिसका उद्देश्य कवि ने स्वयं, सहजानंद स्वामी की वंदना के पश्चात् आरंभ में ही लिख दिया है।[72]

दोहा :-

नर नारायण देव कुं॥ भज मिटहीं भव फंद॥
सौ मम इष्ट अभीष्ट प्रद॥ श्री गुरु सहजानंद॥2॥
वरनुं विविध प्रकार करी॥ पंचरत्न कौ मैव॥
जैही सुनी जन भवजन तरे॥ करे सदा हरि सेव॥3॥

सोरठा :-

दृढ़ वैराग्य विवेक ज्ञान। ध्यान विज्ञान पुनित॥
कहुं भिन्न-भिन्न एक एक करत। सबहि आसा रहित॥1॥

माया कृत मिथ्या सबें। जैसो स्वप्न विलास॥

नर नारायण देव भज। त्यज सब जुठी आस॥2॥

कवि ने **'समाज देख जग जुठ पसारा'** की बार-बार आवृत्ति से दृढ़ वैराग्य को पुष्ट किया है। **'सार असार विवेक जेही'** की बारंबार आवृत्ति से विवेक को स्पष्ट किया है। यह विवेक संग, कुसंग, शुभ, अशुभ आदि को लेकर है।

''यातें अचल ज्ञान उर धरना'' की आवृत्ति से ज्ञान का विवेचन किया गया है।

''युँ हरिध्यान अचल उर धारो'' की बारंबार आवृत्ति से श्री हरि के ध्यान को स्पष्ट किया गया है।

''सोई विज्ञानी संत कहावे'' की आवृत्ति से विज्ञान को उद्भासित किया गया है। जिसके अंतर्गत सत्-चित् आनंद ब्रह्म का ज्ञान, परमात्मा का अनहद नाद, प्रकाश तथा चैतन्यता का ज्ञान होना विज्ञान है। पुरुषोत्तम को सबसे ऊपर मानकर ईश्वर का भजन करने वाला विज्ञानी संत है।[73]

इस प्रकार 44 दोहे तथा 77 चौपाई में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ है। ग्रंथ के अंत में ग्रंथ-रचना संवत् तथा स्थल दिया गया है।[74]

सवंत् अढ़ार अठ्योतेरे, सुखप्रद श्रावन मास।

शुक्ल पक्ष की द्वितीय दिन, पूरन ग्रंथ प्रकाश॥7॥

उत्सवामृत :

यह रचना गीति काव्य के अंतर्गत आ गई है। इसमें स्फुट पद, रास तथा विभिन्न अष्टक इत्यादि है। यह रचना वडताल में संवत् 1880 के फाल्गुन मास की कृष्णद्वितीया के दिन संपूर्ण हुई थी।

नारायण चरित्रम :

यह ग्रंथ मुक्तानंद स्वामी द्वारा लिखा गया है। इस ग्रंथ में श्री सहजानंद स्वामी के दुर्वासा मुनि के द्वारा दिये गये शाप निवारण हेतु इस पृथ्वी पर जन्म तथा सहजानंद की अपनी इहलीला समाप्त करने तक का पूरा वर्णन किया गया है। [75] संक्षेप में इसमें सहजानंद स्वामी

के जन्म, भ्रमण, दीक्षा, सम्प्रदाय प्रसारण, उत्सव, यज्ञ, मंदिर निर्माणादि का संक्षेप में विभिन्न रागों के पदों में उल्लेख कियागया है। **'सत्संग जीवन'** में जिस प्रकार नारायण मुनि के जीवन-चरित्र तथा अप्राकृत चरित्र का उल्लेख प्राप्त होता है वैसे ही इसमें भी है। [76] अंत में सम्प्रदाय में दीक्षा लेने की विधि का संक्षेप में निरूपण करके फलश्रुति, रचना काल तथा स्थान का भी उल्लेख कर दिया गया है। चरित्रात्मक ग्रंथ के रूप में इसका पाठ किया जाता है। इसमें कुल 34 पद है। इसे अध्यायों अथवा विश्रामों में विभाजित नहीं किया गया है।

झूलना :

इसके रचनाकार ब्रह्मानंद स्वामी है। जिसकी रचना संवत् का उल्लेख कवि ने नहीं किया है। इस रचना में ब्रह्मानंद नाम की छाप सर्वत्र पाई जाती है। आरंभ के 30 छंदों में मायिक जीवों को त्रास दिखाने के लिए कवि ने अत्यन्त कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। इसके बाद 12 छंदों में साधु वेशधारी कपटाचरण करनेवाले लोगों की पोल खोल कवि ने अंतिम छः छंदों में संत के लक्षण तथा संत की महत्ता निरूपित कर एक छंद में संक्षिप्त स्वपरिचय देकर अंतिम छंद में झूलना रचना की संख्या तथा विषय निरूपण में किये गये छंदों के प्रयोग की संख्या भी स्पष्ट लिख दी है।

आदि त्रीस में मायिक जीवहुको,लखी रीत देखावन त्रास है जी
पीछे मेल लजावन माड़ वा के लखे द्वादस वाक्य विलास है जी॥
पीछे आठ में संत की रीत लखी, सोई सत्य प्रभू जी के दास है जी।
ब्रह्मानंद विचार के तोलनाजी यह झूलना नंग पचास है जी॥50॥

विवेक चिंतामणी :-

विवेक चिंतामणि ब्रह्मानंद द्वारा रचित कृति है। 61 चन्द्रवला छंदों की इस रचना में कवि ब्रह्मानंद ने अपना उपनाम सर्वत्र श्रीरंग ही रखा है। संपूर्ण रचना में कवि ने विवेक को उत्तम स्वकरणीय अनेक उदाहरणों द्वारा कहा है। इसकी शैली भी 'उपदेश चिंतामणि' जैसी ही है। यह रचना असाधुओं के अनेक कपटाचरण के उदाहरणों से परिपूर्ण है। उपदेश चिंतामणि की भांति ही इस रचना में भी रचनाकाल का निर्देश नहीं किया गया है। किन्तु कविने इसमें अपने रंगदास नाम की छाप रखी है जिससे प्रकट होता है कि यह रचना सं. 1861 की है क्योंकि सहजानंद स्वामी ने कवि को जोरिता ग्राम में सं. 1891 में दीक्षा दी

थी और उनका नाम रंगदास रखा था। बाद में उसी वर्ष कविता के लिए रंगदास नाम उपयुक्त न समझकर सहजानंद स्वामी ने रंगदास से बदलकर कवि का नाम ब्रह्मानंद रख दिया था। अतः प्रमाणित होता है कि रंगदास छाप वाली रचनाएँ संवत् 1891 की रचनाएँ हो सकती हैं।

गुरु चौवीशी :-

यह ग्रंथ मुक्तानंद स्वामी ने लिखा है। ''मुक्तानंद काव्यम्'' की भूमिका में, कवि मावदानजी द्वारा गुजराती में मुद्रित हैं, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। इसकी कोई हस्तलिखीत प्रति नहीं मिलती। इसके अंतर्गत कवि के मूलदास नाम की छाप है। इसके आरंभ में मंगलाचरण के पश्चात् ग्रंथ महिमा है। तत्पश्चात कवि ने प्रत्येक गुणों का संक्षेप में उल्लेख किया है। अंत में 'ग्रंथोत्पति समय दर्शक' शीर्षक के अंतर्गत ग्रंथ रचनाकाल का निर्देश करके कहा गया है कि देही (दत्तात्रेय) अब सहजानंद के रूप में प्रगट हुए हैं।

ग्रंथोत्पति समयदर्शक :

संवत् अढ़ार त्रेसठे ज्येष्ठ पक्ष श्याम सुहाये
तेरस तिथि भृगुवार गुरु चोबीसी तब गाये
बाजत-शुभ बाजींत्र बजावत गुनिगन जैसे।
त्युं प्रेरक गुरु होय कहावत प्रभु यें ऐसे।
सो गुरु सहजानंद प्रभु प्रगट है अब अशरन, शरन,
मूलदास के उर सदा बसो यह मूरतिमन हरना 33

इस प्रकार यह ग्रंथ संवत् 1863 ज्येष्ठ मास कृणा पक्ष की 13 शुक्रवार के दिन पूर्ण हुआ।[77] पूरी रचाना 33 छप्पय छंदों में सूंपूर्ण की गई है।

सम्प्रदाय प्रदीप :

सम्प्रदाय प्रदीप के रचनाकार स्वामीनारायण सम्प्रदाय के संत कवि ब्रह्मानंद स्वामी है। इस ग्रंथ की हस्तलिखीत प्रति स्वामीनारायण मंदिर, वडताल में सुरक्षित है। इस में 56 पृष्ट हैं। पूरे ग्रंथ को कवि ने 18 अध्यायों में विभाजित किया है। इस का रचनाकाल कविने पौष शुक्ल सप्तमी, रविवार सम्वत 1878 लिखा है। ग्रंथ के आरंभ में कविने नारायण, नर

उद्धव एवं गुरु संहजानंद की वंदना करके गुरु सहजानंद द्वारा कही गई सम्प्रदाय प्रदीप की परम्परा के वर्णन करने का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख कर दिया है। ब्रह्मानंद ने यह भी स्पष्ट लिख दिया है कि मेरे गुरु हरि के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं।

इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय में परब्रह्म श्री कृष्ण के जन्म से लेकर द्वाराका में उनके द्वारा की गई लीलाओं का संक्षिप्त में नामोल्लेख कर कृष्ण के पश्चात् जीव का उद्धार करने हेतु अपने ज्ञान ध्यान में सर्वश्रेष्ठ उद्धव को इसका दायित्व सोंप दिया ।

इस प्रकार समस्त रचना के अंतर्गत कवि ब्रह्मानंद ने श्रीमद् उद्धव स्वामी श्री रामानुज का एवं इनके गुरु का वृतांत और गुरु परम्परा का निरूपण किया[78] है, इस कारण सम्प्रदाय में इस रचना का विशेष आदर एवं महत्व है। अंत में ग्रंथ की छंद-संख्या का उल्लेख करके गढ़डा नामक स्थान पर ग्रंथ रचना करने का भी उल्लेख कर दिया गया है। अंत में ग्रंथ की महत्ता प्रतिपादन में एक दोहा लिखकर ग्रंथ समाप्त किया है।

संवत अठार अठोतर वरसे पौष शुक्ल सप्तमीस्थित दरसे ॥
रविवार सुमग जोग नवीना ॥ ते हि दिन ग्रंथ समापत कीनो ॥10॥

सुमपि प्रकाश :-

इस के रचनाकार ब्रह्मानंद स्वामी है। इस प्रति के लिपिकार का नाम ठकर लालजि शिबजि गढडावाला लिखा हुआ है। प्रतिलिपि लिखकर पूरी करने की तिथि संवत् 1954 मागसर वदि आठम ने रोज लखि पुरो कर्यो छे ॥ दिया हुआ हैं। ''सुमति प्रकाश'' बीस विश्रामों में लिखा गया हैं उसमें पाँच वर्तमान के धर्म एवं गृहस्थ स्त्री तथा पुरुषों के धर्म, प्रायश्चित इत्यादि विषयों पर लिखा गया है। [79] पंच वर्तमान में इन्होंने निर्लोभ, निर्मान, निस्पृह, निष्काम, निः स्वार्थ का वर्णन किया है। रचना के अंत में (बीस विश्रामों के अंत में) दो दोहों में रचना पूर्ण होने के तिथि संवत् तथा स्थान का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

संवत् अष्टादश ही॥ वरस अठोतर जाण॥
मा सुद पंचमी वार बुध॥ पुरण ग्रंथ प्रमांण॥1॥
श्री नगरे शुभ शहर में॥ नर नारायण पास॥
वहां रही ब्रह्मानंद कनि॥ किनो सुमति प्रकास॥2॥

ग्रंथ के प्रारंभ में कविने 5 दोहों में श्री सहजानंद स्वामी के परब्रह्म स्वरूप की वंदना करके ग्रंथ रचना के संबंध मे लिखा है कि सहजनांद स्वामी के कहने से उन्होंने यह ग्रंथ लिखा है जिसका उदेश्य है वर्णाश्रमधर्म और प्रौढ़ निगम पंथ को त्याग कर चलने वालों की कुबुद्धि नष्ट हो और उसके स्थान पर उन्हें सुमति प्राप्त हो । इसलिए ग्रंथ का नाम सुमति प्रकाश दिया है।

वर्णाश्रम उनमत चलत॥ प्रौढ निगम तज पंथ॥
जग व्याप्या कलि जानि के॥ गुंथन करयो सौ ग्रंथ॥6॥
ताते सुमति प्रकाश यह॥ धरयो ग्रंथ को नाम॥
कुमति छंद कुठार है॥ समुति कु सुख धाम॥8॥

प्रथम विश्राम के अंतर्गत कवि ने छप्पय दोहा तथा त्रोटक [95] छंदों में बदरि का श्रमस्थित नर नारायण के आश्रम का वर्णन किया है। **द्वितीय** विश्राम में कविने नर नारायण के आश्रम में जाकर मुनियों द्वारा स्तुति करना तथा नारायण द्वारा पूछे जाने पर, पृथ्वी पर अधर्म बढ़ जाने का वृतांत कहना उल्लेखित किया है।

तीसरे विश्राम में कौशल देश में श्री सहजानंद के जन्म का कारण निरूपित किया गया है चतुर्थ विश्राम में बताया गया है कि किस प्रकार धर्म देव ने श्री कृष्ण की आराधना की और किस प्रकार दुर्वासा के श्राप से मुनियों की रक्षा करने के लिये कृष्ण उनके घर पुत्र रूप में अवतीर्ण होंगे इसका वर्णन किया गया है। इसमें सभी प्रसंग अनुषांगिक विवरणों सहित दिये गये हैं। पंचम विश्राम में सहजानंद स्वामी के जन्म होने, उत्सव, मंगल आदि का संक्षिप्त विवरण देते हुये कविने उनके संस्कारों एवं शिक्षा का उल्लेख किया है। **छठे** अध्याय में रामानंद स्वामी के स्वर्गवास के पश्चात् सहजानंद स्वामी का उध्दव सम्प्रदाय का महंत बनना श्रध्दा एवं विनम्रता पूर्वक लिखा है। सहजानंद स्वामी के सदगुणों के साथ साथ उनके परब्रह्मत्व को भी कवि ने उल्लेखित किया है। उनके द्वारा पंच वर्तमान सत्संग में चलेजाने का भी उल्लेख है। **सांतवे** विश्राम में ब्रह्मानंद ने निर्लोभी वर्तमान का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। तथा विषय-वासनाओं की निस्सारता मायिक पदार्थो में प्रीति की विशाक्तता, काम, क्रोधादि के त्याग की महत्ता और भक्ति का उपदेश दिया है।

अष्टम आश्रम में कविने काम-वासना की प्रबलता तथा काम-वासना के दमन और

शमन का कर्णन किया है। **नवमें** अध्याय में ब्रह्मचारियों और साधुओं के लिए अष्ट प्रकार से मैथुन त्याग करने का विवरण है। साथ उनमें अपवास करने का विधान दिया गया हैं। **दशम** अध्याय में रसासक्ति पर जय प्राप्त करने का उल्लेख हुआ हैं। **एका दश** विश्राम में निस्पृहता का निरूपण कवि ने किया है। **द्वादश** विश्राम में निर्मान वर्तमान का निरूपण कवि ने किया है। **त्रयोदाश** विश्राम में कवि ने स्त्री कर्म का निरूपण किया है । **चतुर्दश** विश्राम में गार्हस्थय धर्म का निरूपण ब्रह्मानंद मुनि ने किया है। **पद्रहवें** विश्राम में कविने अधर धाम की शोभा का वर्णन किया हैं। **सोलहवें** तथा **सत्रहवें** विश्राम में नर्क कुंड निरुपण किया गया है कि किस कुकर्म से किस नर्क में किस प्रकार की यातना जीव को भोगनी पड़ती है। **सत्रहवें** विश्राम में पापियों के कर्मानुसार नर्क के दुःखों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। **अठारवें** अध्याय में संतों की महिमा का वर्णन हैं । **उन्नीस वें** विश्राम में अत्यंत संक्षेप में सहजानंद स्वामी के सोरठ देश में लोज, पिपलाना,जीरनगढ़, मानकुंवा आदि के भक्तों के फंद काटकर काठियावाड़ में गढ़डा में आकर दादा खाचर के यहाँ रहने का उल्लेख मात्र करके गुर्जर देश में अहमदाबाद आने का वृतांत दिया गया हैं जहाँ दृष्टोंने उपद्रव भी खड़ा किया जिन्हें सहजानंद स्वामी ने जीत लिया। **बीसवें** आश्रम में भी श्री बद्री महात्मय निरूपण कवि का इष्ट रहा है। अंत में कवि ने रचना संवत् का इस प्रकार उल्लेख किया है ।

संवत् अष्टादास सही॥ बरस अठौवर जाण॥
माह सुदी पंचमी वार बुध॥ पुरण ग्रंथ प्रमाण॥1॥
श्री नगर शुभ सहर में॥ नर नारायण पास॥
तहां रहि ब्रह्मानंद कवि॥ किनो सुमति प्रकांश॥

ब्रह्मानंद काव्य में यह रचना गुजराती लिपि में प्रकाशित की गई है।[80]

उपदेश चिंतामणि :

इस कृति के रचनाकार ब्रह्मानंद स्वामी है। उपदेश चिंतामणि में कवि ने अपने उपनाम श्री रंग की छाप सर्वत्र लिखी हैं । 47 चन्द्रावला छंदो में कवि ने सांसारिक पदार्थो की निः सारता तथा उनमें आसक्ति को जीव की मूर्खता के साथ जीवन की क्षण भंगुरता के वर्णन से वैराग्य की भावना उदबुद्ध करने का प्रयत्न की शैली में किया हैं। इसमें छंद का उपयोग शैली के अत्यन्त अनुकूल एवं प्रभावोत्पादक है। कवि ने कहीं भी इसके रचनाकाल

या स्थान का उल्लेख नहीं किया है।

गुरूदेव को अंग :

यह रचना ब्रह्मानंद द्वारा लिखी गई है। यह एक अत्यंत लधु कृति है। इसको कवि ने अथ और हति के द्वारा कृति का रूप दिया है अतः इसे कृति माना जाता है।

इसमें कवि ने अपने गुरु सहजानंद स्वामी के परात्पर स्वरूप का वर्णन करके उनकी महिमा का गायन किया है। आरंभ में कवि अपने गुरु को दैवाधिदेव, अमेष, अखंड, एवं पिंड ब्रह्मांड का आश्रयदाता तथा अनेक जीवों को तारने की टेक वाला, कहकर, कहता है कि ऐसे परम दयालु संसार मे एक ही है।

ब्रह्मानंद समझाते है कि गुरु शब्दातीत परम प्रकाशन होता हैं। जिसकी शरण में जाते ही अविद्या का नाश हो जाता है। उसी को अपना सर्वस्व समर्पित करना चाहिए । सब मत, सब जग देखकर तब गुरु करना चाहिए ।

गुरु गुणग्राम अनहद है, जगत मैं धर्म स्थापना और स्वधाम में उसक ध्येय रहता है। वह अखंड आप्तज्ञान है, आपदाएँ नष्ट करता है। वह सच्चा गुरुदेव सदैव अविचल हैं।

इस कृति के अंत में कवि कहते हैं कि घर घर गुरु नहीं होते हैं, सद्गुरु के चरण, सरोज का सुधारस पान करो। इस कृति में भी कविने चंद्रावला छंदों अथवा स्थान का उल्लेख नहीं किया है।

विवेक चिंतामणि :

इस रचना के रचना कार मुक्तानंद स्वामी हैं। इस की रचना कविने दुर्गपतन स्थान पर अगहन वदी एकादशी, दिन गुरुवार संवत 1882 को समाप्त की जिसका उल्लेख कवि ने स्वयं अंत में कर दिया है -

संवत अढ़ार व्यासियो। कृष्ण पक्ष गुरुवार॥
अगहन वद्य एकादशी, ग्रंथ संपूरण सारा॥67॥ पृ. 114

यह ग्रंथ साखी में लिखा गया है।[81] इस ग्रंथ में 1140 साखी छंद है।[82] 'मुक्तानंद काव्यम्' ग्रंथ में मुक्तानंद स्वामी की विवेक चिंतामणि एक स्वतंत्र कृति दी गई है। इसके प्रारंभ

में मंगलाचरण तथा ग्रंथ-रचना का हेतु भी दिया गया है कवि कहते है कि सहजानंद स्वामी ने मुझे अलग अलग अंगों की रचना करने का आदेश दिया है। वह मेरे गुरु है अतः उनकी आज्ञा शीर धारण कर विवेक चिंतामणि की रनचा करता हूँ ।[83] इस रचना के अंतर्गत 64 अंग दिये गये है। जो इस प्रकार है -

1) सद्गुरु को अंग (2) कपटगुरु को अंग (3) उपदेश को अंग (4) काल त्रास को अंग (5) देह आत्मा वियोग को अंग (6) तृष्णा को अंग (7) तृष्णा निवार को अंग(8) धीरज को अंग (9) विश्वास को अंग (10) देह मलिन को अंग (11) स्त्री निंदा को अंग (12) दुष्ट को अंग (13) मन को अंग (14) चानक को अंग (15) मिथ्या ज्ञानी को अंग (16) वचन विवेक को अंग (17) उपासना को अंग (18) पति व्रता को अंग (19) विरहिणी को अंग (20) पति प्रशंसा को अंग (21) वस्तुसार को अंग (22) शूरातना को अंग (23) साधु को अंग (24) नवधा भक्ति को अंग (25) प्रेमी भक्त को अंग (26) उत्तम भक्त को अंग (27) हरिजन को अंग (28) हरिविश्वास को अंग (29) सुविचार को अंग (30) खल ज्ञानी को अंग (31) प्रभु प्रताप को अंग (32) नास्तिक को अंग (33) कुपात्र को अंग (34) पुरुषार्थहीन को अंग (35) पुरुषार्थ युक्त को अंग (36) हरि विमुख को अंग (37) कपटी को अंग (38) आशाको अंग (39) निराशी को अंग (40) देहात्मवादी को अंग (41) असंत को अंग (42) शिक्षा को अंग (43) कुमति को अंग (44) मतवादिन को अंग (45) प्रत्यक्ष को अंग (46) परीक्षा को अंग (47) कर्मजड़ को अंग (48) भक्ति विवेक को अंग (49) निंदक को अंग (50) आनंदी को अंग (51) हरि कृपा को अंग (52) लंपट को अंग (53) ज्ञान गरीबी को अंग (54) कुसंग त्याग को अंग (55) दैवी जीद को अंग (56) आसुरी जीव को अंग (57) जमजातना को अंग (58) वैराग्य को अंग (59) विवेक को अंग (60) ज्ञान को अंग (61) ध्यान को अंग (62) विज्ञान को अंग (63) भगवद्धाम प्राप्ति साधन को अंग (64) वैकुंठ धाम प्राप्ति को अंग[84]

उपर्युक्त अंगों के नामों से ही उनमें उपन्यस्त विषय का बोध हो जाता है। उपर्युक्त अंगों का लक्ष्य भक्ति है। भक्ति के मार्ग पर बाधक अंगों का उल्लेख भी भक्ति के लिए है, तथा भक्ति के लिए सहायक अंगों का उल्लेख भी भक्ति के लिए है। इसके अतिरिक्त सम्प्रदाय में

मान्य एवं उपदिष्ट साधना पक्ष संबंधी अंग सम्प्रदाय गत साधना को अवगत कराने के साथ-साथ भक्ति के प्रत्यक्ष सहायक तत्व के रूप में विधोचित हुये हैं। प्रथम प्रकार में कपटी गुरु को अंग, तृष्णा को अंग, कुमति को अंग आदि को रखा जा सकता है । जबकी दूसरे प्रकार में उपदेश, धीरज, आशा आदि अंगों के समावेश है। उपासना को अंग, नवधा भक्ति के अंग, प्रेमिभक्त को अंग ध्यान को अंग आदि तृतीय प्रकार के अंग है। इन सबके अतिरिक्त एक चौथा प्रकार के अंग भी इसमें संयोजित है जिनके द्वारा सम्प्रदाय की मान्यताओं का सूचन होने के साथ-साथ उनमें विश्वास दृढ़ करने का उपक्षेप संभावित होता है। हरिकृष्ण को अंग भगवदधाम प्राप्ति को अंग तथा वैकुंठधाम प्राप्ति को अंग चतुर्थ प्रकार के अंतर्गत आते है।

ब्रह्मविलास :-

संवत् 1883 अषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वितीय दिन रविवार को दुर्गपुर में ब्रह्मानंद स्वामी ने ब्रह्मविलास रचना संम्पूर्ण की थी । [85] ब्रह्मानंद स्वामी की यह रचना 'ब्रह्मानंद काव्यों' में संग्रहीत है। इसमें सवैया, मनहर , कुंडलिया, छप्पा आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। [86] ब्रह्मविलास की विषय वस्तु विभिन्न अंगों में प्रस्तुत की गई है। संपूर्ण रनचा में प्रयुक्त छंदों की संख्या 380 है।

इस रचना का आरंभ कविने सहजानंद स्वामी की कृपा से किया है। कविने सहजानंद स्वामी को मंगल रूप गुरु कहा है जिसके उपदेशों से कवि के पाप-ताप मिट गए हैं। इस के **श्री गुरुदेव को अंग** में गुरु की महत्ता का निरुपण किया गया है- एक उदाहरण दृष्टव्य है-

अहंता अनंग के प्रसंग सब किए नाश ।
बैतन के रंग निज संगिन सुधार है।
कहत है ब्रह्मानंद काय मन बानी करी
ऐसे गुरूजन सो हमारे किरतार है ॥

उपदेश को अंग में कवि ने कहा है कि है हंस (देहधारी आत्मा) सत्संग छोड देने पर श्रम रूपी बाज तेरा मांस खा जायेंगे अतः चतुराई करके अपना हित साध ले। इस प्रकार इसमें सत्संग की महत्ता बताई गई है।

काल को अंग में कवि धन आदि में रमे हुए लोगों को मृत्यु का भय दिखाकर उनसे विमुख होने का उपदेश दिया है। **देह आत्मा विछोड को अंग** में कवि ने आत्मा के द्वारा शरीर के परिचालन की बात शब के उदाहरण द्वारा की है। **तृष्णा को अंग** में कवि ने तृष्णा के कारण मनुष्य द्वारा अनेक अकाज करने का विवरण देकर सिद्ध किया है कि तृष्णा वैराग्य के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है **अधीर्य को अंग में** कवि ने पेटको अनर्थ का कारण बाताया है। **विश्वास को अंग** में इश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास रखने को कहा गया है। **देह मलीन त्याग प्रकार को अंग** देह की मलीनता के प्रति संकेतकर उस पर अभिमान न करने का उल्लेख किया है। **नारी निंदा को अंग** में कवि ने दुश्चरित्र स्त्रियों में आसक्त व्यभिचारी पुरुषों के बोध के लिए नारी के शरीर की मलिनता का ज्ञापन किया है। **दुष्ट को अंग** में कवि ने दुष्ट को सर्वाधिक दुखपाता कहा है। **मन को अंग** में कवि मन की स्वच्छन्द गति के कारण उस पर विश्वास न करने को कहता है। **चानक को अंग** में कवि ने नाना कर्म कर प्रभु की खोज करनेवालों से प्रकट प्रभु सहजानंद स्वामी की भक्ति करने को कहा है। **विपरीत ज्ञानी को अंग** में कवि ने ऐसे लोगों के प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया है जो स्वयं को ब्रह्मज्ञानी कहते हैं। **वचन विवेक को अंग** में ब्रह्मानंद ने वाणी को उत्तम मध्यम और कनिष्ट तीन प्रकाट की कहा है। **उपासना को अंग** में उपासना का महात्म्य बताया है। **पतिव्रता को अंग** में कविने भक्तों की एकनिष्ठता को सती साध्वी स्त्रियों के प्रति प्रेमकी उपमा से तौला है। **विरहिता को अंग** में कृष्ण के प्रति विरह से थोड़ा दुख अनुभव करती हुई एक गोपी दूसरी गोपी से अपना रोना रोती है। **सूरमां को अंग** में सच्चे भक्त और सूरमा की तुलना की गई है। **साधु को अंग** में कवि ब्रह्मानंद ने साधु के गुण बताकर साधु संग को अनुपम बताया है। **सांख्य को अंग** में ब्रह्मानंद ने आत्यंतिक प्रलय से आरंभ कर सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष की सिस्रिक्ष से गुणक्षोम द्वारा सृष्टि का सृजन आदि वर्णित किया है।

इस ग्रंथ के अंत में कवि ने लेखन सम्बन्धी स्थान, तिथि संवत् का उल्लेख कर फलश्रुति संबंधी आशीष दिया है कि इसे पढ़ने पढ़ाने वाले पर जगदीश सदैव प्रसन्न रहेगा ।

लग्न शकुनावली :

यह रचना निष्कुलानंद काव्य में प्रकाशित हुई है। इसमें कवि ने केवल सत्रह दोहे लिखे हैं। प्रथम दोहे में वंदना करके द्वितीय में कहा गया है कि शुभ लग्न में विचार करने से

कार्य सिद्धि होती है। तदुपरांत उसमें अलग अलग लग्नों के विषय में कहा है कि किस लग्न में प्रश्न करने का क्या फल होता है।

प्रश्नों का उत्तर देनेवाले ज्योतिषियों के लिए इसका कुछ महत्व हो सकता है। इसमें दिये हुये लग्नों में पूछे जाने वाले फलों की असंदिग्धता के विषय में कुछ भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

अंतिम दोहें में माह मास की द्वितीया (संवत 1883) के दिन रचना पूर्ण होने का उल्लेख भी कवि ने कर दिया है।

कपिल गीता : इस रचना के रचनाकार स्वामी मुक्तानंद है। यह ग्रंथ दुर्गपुर में संवत् 1883 जन्माष्टमी रविवार के दिन पूर्ण हुआ हैं।[87]

संवत् अठार रू त्रयासीयो, जन्माष्टमी जेहू
रविवार पूरन भई, सुखप्रद गीता एहू॥
दुर्ग नाम पुरकेविषे, उन्मत सरिता तीर।
हरि आज्ञा भाषा भई, तरत सबही भव पीर॥

यह ग्रंथ भागवत तृतीय स्कंध में 25 से 33 अध्याय में वर्णित कपिल-देवहूति संवाद का अनुवाद है। ग्रंथ के प्रारंभ में कवि नें श्री हरि की स्तुति करके इस बात का समर्थन किया हैं कि इस ग्रंथ की रचना श्री हरि की आज्ञा से हुई थी।[88] यह रचना 'मुक्तानंद काव्यम्' में प्रकाशित हो चुकी है। यह ग्रंथ नव अध्यायों में विभाजित हैं। प्रथम अध्याय में एकांतिक भक्ति योग, द्वितीय में तत्वलक्षण, तृतीय में प्रकृति पुरूष विवेक, चतुर्थ में अष्टांग योग, पंचम में भक्ति भेदकाल स्वरूप, षष्टम में वैराग्य हेतु संसार-दुःख निरूपण, सप्तम में वैराग्य हेतु कर्म संसृति-निरुपण, अष्टम में सकाम-निष्काम भागवद् धर्म फल-निरूपण तथा नवें में देवहूति-सिद्धदशा निरूपण का उल्लेख है। प्रत्येक अध्याय के आरंभ में उसके तथा पहले के वर्ण्य विषय का उल्लेख है।[89] ग्रंथ के अंतिम भाग में फलश्रृति दी गई है कि इसे सुनने से यातना से मुक्ति मिलती है तथा प्रभु धाम की प्राप्ति होती है। सम्प्रदाय में फलश्रृति के अनुरूप ही इस ग्रंथ का महात्म्य आंका जाता है तथा सत्संगियों में श्रद्धासहित इस का पाठ प्रचलित है।

इस प्रकार ग्रंथ का उद्देश्य भक्ति योग, सांख्य योग, तथा अष्टांगयोग द्वारा वैराग्य

को दृढ़ कर भगवत् भजन का पथ प्रदर्शित करना है।

हरिगीता :

स्वामीनारायण सम्प्रदाय के संत कवि ध्यानानंद स्वामी ने 'हरिगीता ग्रंथ की रचना की हैं। पूरे ग्रंथ को कविने पांच अध्यायों में विभाजित किया है तथा संपूर्ण रचना राजा और सुव्रत मुनि के संवाद रूप में लिखी गई है। जिसका विषय विवेचन इस प्रकार हैं।

'सत्यपुरुष लक्षण निरूपण' : नामक प्रथम आध्याय में कवि नें हरिकृष्ण भगवान (सहजानंद स्वामी) की वंदना का ग्रंथ प्रारंभ किया है-

सोरठा : श्री हरि कृष्ण अनूप॥ भूप है अज भव आदि के॥
राजित मंगल रूप॥ निगम रहत जेहि नाम नित॥1॥ [90]

वर्षाश्रम-धर्म निरूपण नामक द्वितीय अध्याय में सहजानंद स्वामी ने भक्ति के अंग तथा स्वधर्मादि लक्षण के विषय में अपनी माता से कहा कि जो धारणा योग्य है वही धर्म है (धार्यातीति धर्म :) तदुपरांत उन्होंने चारों वर्ण और चारों आश्रमों के साधारण और विशेष कार्यो का वर्णन किया है।

ज्ञानस्वरूप निरूपण :

नामक तृतीय अध्याय में आत्मज्ञान एवं परमात्मज्ञान नाम से ज्ञान के दो भेदों की व्याख्या की है।

वैराग्य स्वरूप लक्षण निरूपण :

नामक चतुर्थ अध्याय के आरंभ में निवेद स्वरूप वैराग्य के विषय में कहते हुये सहजानंद स्वामी ने अपनी माताजी को बताया, कि हरि के बिना सब कुछ दुःख कूप के समान है।

भक्ति स्वरूप निरूपण :

नामक पंचम अध्याय में भक्ति की परिभाषा देते हुये नवधा भक्ति को अत्यंत श्रेष्ठ कहा है।

श्रावण नाम अरु कीर्तन कहिये ॥ हरि स्मरण पद सेवन चाहिये॥
अंचर वंदन दास्य कहावे ॥ सख्य रू आत्म निवेदन गावे॥2॥

सुव्रतमुनि कहते हैं कि इस प्रकार अपने पुत्र से माता प्रेमवती ने यह रहस्य सुनकर उनसे कहा कि तुम्हीं वह कृष्ण हो । अब तुम्हारे वचन सुनकर मेरा संशय नष्ट हो गया है। अंत में फलश्रृति के साथ ग्रंथ की समाप्ति की गई है। फलश्रृति के साथ कवि ने अपने नाम का भी उल्लेख किया है।

प्रेमवती श्री हरिन को॥ यह सुंदर संवाद॥
सुनत लहत जन मोक्ष पद॥ उर उपषत अह्ल्लाद्॥105॥
हरिगीता सब हरन दुःख॥ रचि भाषा सुख कंद॥
श्री नारायण नाथ कुं॥ धरि उर ध्यानानंद॥106॥

प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में भी कवि के नाम की छाप है परन्तु लेखन संवत एवं रचनाकाल तथा लिपिक के नाम का उल्लेख पूरे ग्रंथ में कहीं नहीं प्राप्त होता है ।

विवेकसार :

यह रचना प्रेमानंद प्रेमसखी की है। जो प्रेमानंद कीर्तन की हस्तलिखीत प्रति में दी हुई है। प्रारंभ में कविने सहजानंद स्वामी की वंदना की है तत्पश्चात् इसमें कवि ने विवेक का सार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है कि आदर्श सत्संगी को किन बातों का पालन करना चाहिए। सत्संगी को ज्ञान, वैराग्य युक्त भक्ति निजधर्म के पालने से प्राप्त होती है। जो सदा स्वधर्म में दृढ़ रहते हैं वे मुक्ति प्राप्त करते हैं । आवागमन के बंधन से मुक्ति पाने के लिए साधुका संग करना आवश्यक है । नीच संग से धर्म और भक्ति का नाश होता है। अधर्मी पुरुष का त्याग कर देना चाहिए तथा सहजानंद स्वामी द्वारा उपदिष्ट एकांतिक धर्म का पालन करना चाहिए । इसमें अत्यंत संक्षेप में कविने समस्त विवेक का सार प्रस्तुत किया हैं।

संवत् 1955 कारतक वद 10 गुरुवार के दिन यह ग्रंथ गढ़डा में संपूर्ण हुआ ।

हरिविचरण :

इस ग्रंथ की रचना निष्कुलानंद स्वामी ने की थी । इस ग्रंथ में मोक्ष प्राप्ति के प्रधान व सरल साधन के रूप में भगवान नाम श्रवण, स्मरण ध्यान और भगवान चरित्र का गान

बताया है। इसमें श्री हरि के प्रति की गई विनय एवं भक्तिपूर्ण प्रार्थनाओं का संकलन हैं। [91] इस ग्रंथ के अंतर्गत कवि ने सहजानंद के घर छोड़ने से लेकर काठियावाड़ में लोज नामक स्थान पर आने तक का तथा फिर गुजरात प्रांत के विभिन्न स्थानों में उनकें भ्रमण का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ में कवि ने उस स्थानों के जहाँ जहाँ सहजानंद स्वामी गये थे, नाम गिनाने के साथ उन व्यक्तियों के नाम भी गिनाए हैं जिनसे स्वामी सहजानंद की भेंट हुई, तथा उन कार्यो का भी उल्लेख किया है जो वहाँ सहजानंद स्वामी ने किये । पुरी रचना को कवि ने 8 विश्रामों में विभाजित किया है। रचना में सोरठा, दोहा और चौपाई छंदों का ही उपयोग किया गया है। इस के रचनाकाल का उल्लेख कविने कहीं नहीं किया है। प्रथम विश्राम में उनके जन्मादि का उल्लेख किया गया है, द्वितीय विश्राम में कच्छ, सौराष्ट्र तथा गुजरात के उन गांवों का उल्लेख है, जहाँ रामानंद स्वामी ने पर्यटन किया। तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें विश्राम में सहजनांद स्वामी के अनुयायी बनने, प्रचार और सत्संग, तथा सहजानंद स्वामी की जनप्रियता आदिका विवरण प्राप्त होता है। आठवें विश्राम में कवि ने सहजानंद द्वारा किये गये समैया उत्सवों का तिथि संवत् सहित उल्लेख किया है।

अरजी विनय :

निष्कुलानंद स्वामी द्वारा रचित यह एक छोटीसी रचना है और **'निष्कुलानंद काव्य'** में प्रकाशित की गई है। इस रचना का उदेश्य शरणागति भाव जागृत करना हैं। इसके द्वारा कवि ने सहजानंद स्वामी के परात्पर ब्रह्म होने का उल्लेख करते हुए उनसे दया की प्रार्थना की है। इसकें आरंभ में छप्पय द्वारा सहजानंद स्वामी की वंदना करके आगे उनके गुणविभूत ऐश्वर्यादि का कथन तथा अपनी अकिंचन गति का उल्लेख कविने किया है। पूर्ण रचना में 4 छप्पय, 4 इन्द्रविजय, 76 मोतीदाम, 16 दोहे तथा एक कक्ति छंद है।

गुण ग्राहक :

निष्कुलानंद स्वामी की यह रचना निष्कुलानंद काव्य में भी प्रकाशित है। इस ग्रंथ में यह बताया गया है कि भगवान गुणों से प्रसन्न होते होने के कारण मनुष्यों को जीवन में अवगुणों से दूर रह कर सद्गुणों का विकास करना चाहिए । [92] कवि निष्कुलानदं ने 101 दोहों में विवेक सिद्धि के हेतु अनेक उदाहणों से उपदेश दिया हैं कि उसी प्रत्येक कार्य अथवा वस्तु की सार्थकता है जो भगवान को अर्पित की जाय । इस रचना के अंत में कवि भगवान

की क्षमा शक्ति तथा उनके वात्सल्य पर अनन्य श्रद्धा रखकर उनसे अपने अवगुण क्षमा करने की याचना करता है।

अवधुत गीता :

यह रचना स्वामी मुक्तानंदजी की है, जौ मुक्तानंद काव्य में प्रकाशित हो चुकी है। यह ग्रंथ भागवत के स्कंध 11 अध्याय 7,8,9 में वर्णित भगवद् उद्धव के संवाद रुप में लिखीत अवधूत गीतम् का अनुवाद है। [93] यह ग्रंथ बड़ताल में 1884 चैत्र नवमी के दिन पूर्ण किया गया है।[94]

दोहा :- सवंत् उठार चौरासियो, अति सुखप्रद मधुमास।
रामनवमी, रविवार दिन, पूरन ग्रंथ प्रकाश।
गुणनिधि गुर्जरदेश मध्ये, वृतालय हरिधाम।
तिनमें ग्रंथ पूरन भयो, अति सुखप्रद अभिराम।

पूरी रचना दोहा, चौपाई सोरठा में रचित है। यह ग्रंथ चार अध्यायों में विभाजित है। आरंभ में मंगलाचरण के बाद रचना के कारण एवं उदेश्य का भी निर्देश कर दिया गया है। इस ग्रंथ के अंतर्गत चौबीस गुरुओं का उल्लेख है और क्रमशः कैसे, किससे, कौन सी शिक्षा ग्रहण की जाये, उसका वर्णन है।[95] वे चौबीस गुरु क्रमशः इस प्रकार है- (1) भूमि (2) वायु (3) आकाश (4) वारि (5) अग्नि (6) चंद्रमा (7) रवि (8) अजगर (9) सिंधु (10) कपोत (11) पतंगा (12) मधमक्षी (13) मदझर मातंग (14) मधु को हननहार (15) मृग (16) मीन (17) पिंगला (18) कुरर पक्षी (19) बाल (20) कुमारी कन्या (21) शरकर (22) मकरी (23) व्याल (24) भमरी अंत में निज देह से भी उन्होंने शिक्षा ग्रहण की है। इस प्रकार यह ग्रंथ उद्धव कृष्ण के संवाद के रूप में वर्णित है।

निति प्रकाश :

यह रचना ब्रह्मानंद की है। इस ग्रंथ में प्रारंभ में कवि ने धर्म भक्ति तथा गोलोक में विराजमान द्विमुख युगल रूप श्री कृष्ण राधा की वन्दना करते नितिप्रकाश ग्रंथ लिखने का उद्देश्य निर्दिष्ट किया है कि जिससे लोगों का निजधर्म अच्चुत रहे एवं परलोक में परममोद प्राप्त हो। पूरे ग्रंथ को कविने आठ अध्यायों में संपूर्ण किया है। इस के अंतर्गत कवि ने इसके रचना समय का भी उल्लेख कर दिया है श्रावण वदी आठम, दिन सोमवार, सम्वत् 1884

को ग्रंथ समाप्त हुआ, गढ़पुर के उनड राजा के घर सहजानंद स्वामी के साथ रहकर कवि ने यह रचना की। ग्रंथ के लिपिकार प्रज्ञानंद साधु ने भाद्रप्रद कृष्ण पक्ष चतुर्थी, दिन रविवार संवत् 1884 को लिख कर यह प्रति समाप्त की जिसका उल्लेख उसने स्पष्टतः कर दिया है।

इस प्रकार प्रथम अध्याय में श्री कृष्ण-राधा युगल रूप की वंदना तथा ग्रंथ लिखने का उद्देश्य है। दूसरे एवं तीसरे अध्याम धृतराष्ट्र एवं विदुर के संवाद है जिसमें द्वितीय अध्याय में धृतराष्ट्र विदुर से निर्मलवाणी कहेना की प्रार्थना करता है। चतुर्थ अध्याय में विदुर धृतराष्ट्र को साध्यदेव तथा दत्तात्रेय का इतिहास बताता है। पंचम अध्याय में विदुर धृतराष्ट्र को राजा मूढ़ और चतुर का अंतर स्वयं से समझने के लिए कहते हैं।

इस प्रकार छठे, सातवें, आठवें अध्यायों में विदुर के माध्यम से नीति, ज्ञान धर्म और व्यवहार की बाते बताई है।

धर्मवश प्रकाश :

स्वामी ब्रह्मानंद द्वारा रचित यह कृत आठ प्रकीर्णो में विभाजित है। प्रत्येक प्रकीर्णो की समाप्ति पर उस प्रकीर्ण के मुख्य वर्ण्य विषय का उल्लेख किया है। इस प्रति के लिखीक का नाम व लिखने का समय भी अंत में दिया हुआ है जो इस प्रकार है :-

(लेखक ठक्कर लालजी शिव जी, निवासी दुर्गपुर के, तिनका से स्वामीनारायण वाचना ॥ संवत् 1954 के पोष मास शुक्ल की तीज को लिखर पुरा किया है।) इसके प्रकीर्णो का विवरण इस प्रकार है -

प्रथम प्रकरण : गोलोक धाम वर्णन

द्वितीय प्रकरण : धर्म भक्ति श्राप निमित्त कथन

तृतीय प्रकरण : धर्म प्रकाश कथन

चतुर्थ प्रकरण : धर्म भक्ति वरदान

पंचम प्रकरण : धर्म भक्ति स्वधाम प्राप्ति कथन

षष्टम प्रकरण : द्विज वैष्णवी दीक्षा प्राप्ति कथन

सप्तम प्रकरण : हरिप्रताप इष्ट शास्त्र कथन

इस ग्रंथ के अंत में कवि ने ग्रंथ के श्रृतिफल का निर्देश करके ग्रंथ रचना दुर्गपुर में संवत 1886, पौष सुदी द्वितीया को पूर्ण करने का उल्लेख कर दिया है।

नारायण गीता :

यह, ग्रंथ मुक्तानंद स्वामी का है। यह ग्रंथ सत्संगी जीवन प्रकरण 2 के 7वें अध्याय का भाषा-नुवाद है। इसके अंतर्गत स्वामीनारायण सम्प्रदाय के आश्रितों के लिए धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, माहात्मय, सत्संग आदि विभिन्न विषयों का विवरण दिया गया है। यह ग्रंथ दोहा, चौपाई, सोरठा आदि में कुल मिलाकर 182 छंदों में वर्णित है।[96] यह ग्रंथ दुर्गपुर में वासुदेव के सामीप्य में लिखा गया है।[97]

धर्मामृत :

के रचयिता ध्यानानंद स्वामी है। इस पूरे ग्रंथ को कविने 6 अध्यायों में विभाजित किया है जो इस प्रकार है। प्रथम अध्याय में मंगलाचर देकर कवि ने लोभ पर विजय प्राप्त करने का उपाय लिखा है। दूसरे अध्याय में काम दोष त्याग करने के उपाय कहे गये हैं। तीसरे अध्यया में तीसरे शत्रु रस के दोष तथा उसको जीतने का उपाय बताया है। चतुर्थ अध्याय में कवि ने सब संबन्धियों को त्याग कर परमसांख्य रूप भगवान के प्रति स्नेह जोड़ना चाहिए । पंचम अध्याय में मान को एक महान दोष तथा अनेक पापों का हेतु कहा गया है। छठे अध्याय में कविने ज्ञानादि लक्षणों का निरूपण किया है। अंत में कवि ने ग्रंथ के ज्येष्ठ सुदी एकादशी, दिन मंगलवार संवत् 1889 वि में पूर्ण करने का उल्लेख किया है और ग्रंथ की फलश्रृति के रूप में कहा है कि जो इस धर्मामृत का पान करते हैं वे जन्म-मृत्यु के भय से मुक्त होकर हरि का धाम प्राप्त करते हैं।

वैकुंठ धाम दर्शन :

यह ग्रंथ मुक्तानंद स्वामी ने लिखा है जो 'मुक्तानंद काव्य' में प्रकाशित किया गया है। यह ग्रंथ भागवत् स्कंध 10 के 28 वें अध्याय का हिन्दी अनुवाद हैं।[98] आरंभ में सहजानंद स्वामी की वंदनाक के बाद कवि ने लिखा है कि सत्संगी लोग हरिधाम का दर्शन करते रहते है। सहजानंद स्वामी की आज्ञा से कविने इस ग्रंथ की रचना की हैं । यह ग्रंथ दोहा, सोरठा

तथा चोपाई छंदों में है। श्री शुक देव परीक्षित संवाद के रूप में इसकी रचना हुई है जिसमें शुकदेवजी परीक्षित राजा को नंद के एकादशी व्रत की समाप्ति पर यमुना स्नान के लिए जाने तथा वरुण के दूतों द्वारा उनके अपहृत किये जाने की कथा सुनाते हैं। कृष्ण उन्हें वरुण के पास से छुडा लाते हैं। गोपों की प्रार्थना पर कृष्ण उन्हें वैकुंठ धाम के दर्शन करते हैं। वैकुंठ दर्शन से गोप गण अत्यंत प्रसन्न होते हैं। इस रचनाको अध्यायों में विभाजित नहीं किया गया है। फलश्रुति के साथ रचना को संपूर्ण कर दी गई है।

ध्यान मंजरी :

यह रचना प्रेमानंद स्वामी की है। ग्रंथ का रचना काल कवि ने रचना के अंत में उल्लेखित कर दिया है- स्थान दुर्गपुर, चैत्र वदी अमावस्या, तिथि वसंत ऋतु, दिवस गुरुवार, संवत 1910 वि। संपूर्ण रचना चौदह प्रकाशों में विभक्त है। प्रकाशों का विषय विवरण इस प्रकार हैं- 'प्रकटं चरित्र कथन', 'श्रीहरि शरीर चिह्न वर्णन,' 'सहज स्वभाव तथा स्तुति वर्णन,' 'श्री हरि स्वयं मूर्ति साधारण लक्षण वर्णन,' 'श्री हरि कृष्ण मानसिक पूजा वर्णन', 'श्री हरि के संतो के नाम वर्णन', चौदहवें प्रकाश में ब्रह्मचारियों के नामों का उल्लेख तथा संतों की महिमा का वर्णन किया है। अंत में कवि ने ग्रंथ का अपसंहार करते हुए प्रस्तुत रचनाका कारण बताया है कि उसने भ्रमर रूपी सज्जनों के लिए यह कुमुदिनी रूपी ध्यानमंजरी रची है।

नारायण कवच :

यह रचना मुक्तानंद स्वामी की है। मुक्तांद काव्य में यह रचना संग्रहीत है। यह ग्रंथ भागवत् स्कंध 6 अध्याय 8 में वर्णित नारायण कवच का अनुवाद है।[99] इसका आधार श्रीमद्भागवत् के षष्ट स्कंध का शुक- परीक्षित संवाद है। राजौवाच एवं श्री शुक उवाच द्वारा रचना की कथा वस्तु प्रस्तुत हुई है। दोहा, चौपाई में रचित इस ग्रंथ के प्रेरणा रूप भगवान स्वामीनारायण है। रचना के अंतर्गत नव अवतारों (1) श्री हरि (2) मत्स्य भगवान (3) नारायण भगवान (4) धन्वन्तरि भगवान (5) वराह मूर्तिक तथा (6) भगवान के आयुध (सुदर्शन, गदा, पांचजन्य शंख, नंदक, ढाल,) नरसिंह भगवान आदि की कष्ट निवारण के लिए प्रार्थना की गई है। इस रचनाको अध्यायों, विश्रामों आदि में विभाजित नहीं किया गया है, न तो छंद संख्या, रचना स्थान अथवा समय का ही निर्देश किया गया हैं। ग्रंथ के अंत

में कहा गया हैं कि सभी प्रकार के कष्ट इसके पाठ से दूर होते हैं, भगवान प्रसन्न होते हैं तथा भूत, भैरव, डाकिनी, वीर वैताल आदि का उपद्रव शांत होता है । इसके प्रभाव से सभी दैहिक, भौतिक, कष्ट समाप्त हो जाते हैं ।

गुण विभाग :

मुक्तानंद का यह लघु ग्रंथ 11 अध्याय के श्री कृष्ण - उध्दव-संवाद पर आधारित है। [100] यह रचना भी मुक्तानंद काव्य में प्रकाशित की जा चुकी है। इसके अन्तर्गत सम्प्रदाय के अंतर्गत तीन गुणों के लक्षणों का निरूपण किया गया है।

आरंभ में सहजानंद स्वामी की वंदना मंगलाचरण के रूप में देकर कवि ने गुण और निर्गुण का स्पष्टीकरण कर दिया है। इसी से उसने रचना को 'गुण विभाग' नाम से ब्रजभाषा में लिखा है।

गुण विभाग अध्याय सो, सुखद सबहि श्रृतिसार।
मुक्तानंद कहे तेहि लिखुं, ब्रजभाषा अनुसार॥10॥

सत्व, रज और तम के प्रभाव से मनुष्य भी तीन स्वधामधर्मी होता है। तीनों प्रभाव वाले मनुष्यों के लक्षण इस रचना में बताये गये हैं। जिस प्रकार यह तीन गुण जीव के देह में है उसी प्रकार वैराज पुरुष के देह में भी यह तीन गुण होते है जिसमें सत्व गुण के बढ़ने से देवत्व, रज से राक्षसत्व और तमौगुण से ब्रह्मांड में घोर सुषुप्ति की अधिकता हो जाती है। इन तीन गुणों के लक्षण के आधार पर तीन वृत्तियों, तीन वास, तीन पुरुष, तीन श्रद्धा तीन प्रकार का आहार, तीन प्रकार के मन, तीन प्रकार के फल, तीन प्रकार का वर्णन है। अतः प्रकृति-पुरुषं आश्रित जड़-चैतन्य वस्तु त्रिगुणात्मक है । यह त्रिगुणात्मकता ही जीवन के लिए संसृति, अनंत, अपार बनाती है। इस जन्म - मरण के कारण स्वरूप इस त्रिगुणात्मकता के वश होकर जीव मनुष्य, देव तथा नरक योनि में घूमता रहता है। अतः ईश्वर में केवल निष्ठा रखने वाला, आत्मस्वरूप होकर परमात्मा को भजने वाला तथा इन तीनों वृत्तियों के भोग में विवेक रखने वाला ही ईश्वर का भक्त हो सकता है। इस प्रकार यहाँ वृत्ति गुणों के स्वरूप के द्वारा मुक्ति के लिए उनतीनों में आवश्यक विवेक की महता गाई गई है।[101]

इस में रचना के स्थान और समय आदि का उल्लेख नहीं किया है। दोहा, सोरठा,

तथा चोपाई छंद ही इस रचना में प्रयुक्त हुये हैं।

वासुदेवावतार चरितम् :

मुक्तानंद काव्यम् में मुक्तानंद स्वामी की यह रचना भी प्रकाशित हो चुकी है। इसमें कवि के रचना काल का निर्देश नहीं किया है, न तो रचना में प्रयुक्त छंदों की संख्या दी है। यह ग्रंथ भागवत स्कंध 2 अध्याय 7 में दिये गये ब्रह्मा-नारद संवाद द्वारा वासुदेव भगवान के विविध अवतारों की बात और चरित्रों का भाषानुवाद है।[102] कलिकाल में सहजानंद स्वामी के रूप में वासुदेव का अवतरित होना लिखा है।[103]

सोई कलिकृत अधर्म हरन, करन पतित भवपार।
भये धर्मसुत श्री हरि तेहि वंदु करी प्यार॥2॥

ग्रंथ के प्रारंभ में मंगला चरण है तत्पश्चात् यह बताया गया है कि जब-जब धर्म की अवनति होती है तब-तब पुरुषोत्तम नारायण अवतार लेते हैं और असुरों का नाश कर पुनः सद्धर्म की स्थापना करते हैं। आरंभ में कहा गया है कि जिन वासुदेव के प्रत्येक युग में अवतार होते रहते हैं, उन्हीं के अवतार सहजानंद स्वामी है। इसके पश्चात वराह, सुयज्ञइन्द्र कपिलदेव, दत्तात्रेय, सनकादिक, नर नारायण, ध्रुव, पृथु, राम, कृषभदेव, मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वामन, हंस, धन्वंतरि, परशुराम, राम, कृष्ण, व्यास, बुद्ध, तथा कल्कि अवतारों द्वारा वासुदेव के प्रगट होने का संक्षिप्त उल्लेख ब्रह्मोवाच द्वारा किया गया है ।

किन्तु इस ग्रंथ में मुक्तानंदजी का मुख्य लक्ष्य मायिक सुख से मुक्त होने के लिए सहजानंद के महिमा-प्रताप का गान हैं । अंत में कविन ने नारायण की समर्थता को द्रष्टिगम्य बनाया है। तत्पश्चात् कवि ने माया से मुक्त होने वाले संत चरित्रों का वर्णन किया है। तत्पश्चात् हरि की अनंत माया से मुक्त होने पर प्राप्त वासुदेव के धाम का स्वरूप वर्णन है। यह धाम बहुस्वरूपा, नित्य, प्रशांत, भयरहित, ज्ञानयुक्त, शुद्ध, मायारहित, अक्षर-तीत है।[104]

इस प्रकार चरित्रों के वर्णन द्वारा श्रीनारायण की महत्ता स्पष्ट कर हरि भजन में उन्मुखता दिखाना मुक्तानंदजी के इस ग्रंथ का लक्ष्य है। अतः इस ग्रंथकी परिणति महात्म्य ज्ञान युक्त श्री हरि की भक्ति मात्र है ।

ग्रंथ के आरंभ और अंत में ग्रंथ के पाठ का महात्म्य दोनों जगह दिया है। इस में अध्याय, विश्राम आदि के रूप में कोई विभाजन नहीं किया गया है। यह रचना चौपाई दोहा, सोरठा में है किन्तु चौपाईयों में संख्या का निर्देश अनियमित है।

मुकुंदबावनी : यह रचना मुक्तानंद स्वामी ने लिखी है। मुक्तानंदजी के पूर्वाश्रम का नाम मुकुंद था और उन्होंने छपैया में इस ग्रंथ को लिखा था।[105] अतः इस ग्रंथ का नाम मुकुंदबावनी सार्थक है। इस के अंतर्गत 54 छप्पय छंदों में कवि ने सहजानंद स्वामी की वंदना की है जिसमें उनके जन्म, कार्य, माहात्म्य, गुण स्वभाव तथा सत्संग के नियमादि के संदर्भ आ जाते हैं।

मुक्तानंदजी ने इस ग्रंथ में प्रकट सहजानंद की महता गाई है तथा सत्संग की महिमा का अधिक गान किया है। इसपर इस रचना के अंतर्गत कवि कहते हैं कि ज्ञान, भक्ति और वैराग्य सत्संग से ही आता है। ईश्वर ने तन रूपी पोत इस भवसागर को तरने के लिए दिया है।

करणधार करूणानिधान सदगुरु सुखदाता।
करुणा निधि कृपा विमल यह जानहुं बाता
अब अहि जो भवसागर तरे सो आतमघाति सही।
मुकुंद महिमा मनुष्यतन कर बजायके देहि।[106]

अंत में कविने रचना के उदेश्य तथा समय का भी निर्देश कर दिया है। श्रावण शुक्ल द्वितीया संवत 1863 को यह रचना संपूर्ण हुई है। अंत में कवि ने फलश्रृति का निर्देश भी कर दिया है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त मुक्तानंद स्वामी की शिक्षापत्री भाषा, निष्कुलानंद स्वामी की 'पुष्पचिंतामणि,' 'चिन्हचिंतामणि,' प्रेमानंद की 'श्री हरि नारायण चरित्रम् शिक्षापत्री,' भूमानंद स्वामी की 'वासुदेव महात्म्य,' अनिनाशानंद स्वामी की 'छपैया महात्म्य' आदि स्वामीनाराय सम्प्रदाय का विपुल साहित्य प्राप्त होता है।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि स्वामीनारायण संप्रदाय उसके संत कवि तथा उनकी रचनाओं का हिन्दी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

संदर्भ सूची

1) Manilal C. Parekh, Shri Swaminarayana P.No. 113-114
2) सत्संगी जीवन, प्रथम प्रकरण, अध्याय 46, श्लोक 13 पृ. 539
3) वही. अध्याय 10, श्लोक 14 से 15, पृ. 113
4) श्री हरिनारायण चरितामृत (प्रेमानंद स्वामी) अध्याय-19 से 22, हस्तलिखित ग्रंथ
5) किशोरलाल मश्रूवाला सहजानंद पृ. 1-2
6) देखिए मध्यकालीन साहित्य अध्ययन एवं अन्वेषण, पृ. 109
7) गुजरात का ब्रज भाषा साहित्य, विराट अभिनन्दन ग्रंथ पृ. 207 (डॉ. आशा कन्नोजिया के लेख ''स्वामीनारायण सम्प्रदाय के कवि'' में से उद्धृत)
8) स्वामीनारायण सम्प्रदाय के कवि डॉ. आशाकन्नोजिया (विराट अभिनन्दन ग्रंथ पृ. 207)
9) वचनामृत
10) डॉ. अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ में डॉ. नटवर लाल अ. व्यास ने इनका नाम घनश्याम तथा जयन्त कृष्ण दवे ने ''गुजरात के साहित्य का इतिहास'' में इनका नाम हरिकृष्ण बताया है।
11) वचनामृत
12) वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास पृ-415
13) गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) अनन्तराव रावल पृ-204
14) श्री स्वामीनारायण पृ. 251
15) मुक्तानंद काव्य, मुक्तानंद महामुनिनुं जीवन चरित्र, शास्त्री हरिजीवनदास, पृ. 33
16) ब्रह्मानंद काव्य, श्री ब्रह्मानंद स्वामी नुं जीवन वृत्तांत, सं. रावसाहब करमशा दामजी तथा मोतीलाल त्रिभोवन दास फोजदार, पृ.19
17) शिक्षापत्री 211, अ. श्री कृष्णवल्लभाचार्य।
18) वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास, पृ. 415
19) हरिजीवनदास : मुक्तानंद काव्यम् पृ.1
20) स्वामीनारायण संम्प्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य, पृ. 34
21) भंक्ति चिंतामणि प्रकरण -131, निष्कुलानंद स्वामी
22) प्रथम प्रकरण, मुक्तानंद स्वामी नुं जीवन चरित्र, शास्त्री हरिजीवदास, पृ. 1 व 5
23) सं. शास्त्री हरिजीवनदास, पृ. 1 व 41
24) निष्कुलानंद काव्य, सं. शास्त्री हरिजीवन दास, पृ. 3
25) श्री स्वामीनारायण, भाई मनीलाल सी पारेख, पृ. 68
26) निष्कुलानंद काव्य, सं. शास्त्री देवचरणदास, पृ. 5
27) श्री स्वामीनारायण भाई मनीलाल सी. पारेख, पृ. 68
28) निष्कुलानंद काव्य, सं हरिजीनदास पृ. 5

29) निष्कुलानंद काव्य सं. शास्त्री देवचरणदास. पृ. 6
30) शास्त्री हरिजीननदास पृ. 6, 7
31) गुजराती साहित्यनी विकासरेखा, पृ. 98
32) माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर, पृ. 205
33) गुजरांती साहित्यना मार्गसूचक स्तंभों, पृ. 219
34) प्रेमानंद काव्य भाग - भूमिका इश्वरदास इच्छाराम मशरु वाला पृ. 5
35) वही. पृ. 5
36) वचनामृत, गढडा मध्य प्रकरण 48, सं शास्त्री हरिजीवनदास
37) प्रेमानंद काव्य, भाग 2 भूमिका, ईश्वरदास इच्छाराम मशरुवाला पृ. 5
38) प्रेमानंद कीर्तन 3 भाग, हस्तलिखित प्रतियां, पुस्तकालय स्वामीनारायण मंदिर वडताल।
39) ब्रह्मानंद काव्य, प्रकाशन रावसाहेब करमशी दामजी एवं मोतीलाल त्रिभोवनदास फोजदार, पृ. 171
40) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 142
41) ब्रह्मानंद काव्य भूमिका प्रकाशक रावसाहब करमशी दामजी एवं मोतीलाल - त्रिभोवन दास फौजदार पृ. 18, 19
42) सत्संगी जीवन, प्रकारण 5, 49 - 24
तथा वौचासन बंड नो संक्षिप्त इतिहास । (बोरसद कोर्ट ना जजमेन्ट साथे) प्रथम भाग ले. शास्त्री हरिजीवनदास
43) श्री घनश्याम लीलामृत सागर, नंदकिशोर दास पुराणी, पृ. 13
44) श्री घनश्याम लीलामृत सागर, पुराणी नंद किशोर दास, पृ. 13-14
45) वही पृ. 17
46) श्री घनश्याम लीलामृत, नन्दकिशोरदास पुराणी, पृ. 17 (सं. 1930)
47) अविनाशानंद काव्यम्, माधवलाल दलसुखराम कोठारी, पृ.7
48) वही. पृ. 7
49) अविनाशानंद काव्यम् माधवलाल दलसुखराम कोठारी पृ. 8
50) अविनाशानंद काव्य, पृ. 12
51) अविनाशानंद काव्य - पृ. 10-11
52) स्वामीनारायण सम्प्रदाय और मुक्तानंद का साहित्य डॉ. अरुणा शुक्ल, पृ. 83
53) वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास पृ. 430
54) वही, पृ. 430
55) कीर्तन संग्रह 1, पृ. 578
56) वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास पृ. 430
57) शिक्षापत्री, 211, अ. श्री कृष्णवल्लभाचार्य,
58) शिक्षापत्री (हिन्दी भाष्य) श्रीमती विराजकुमारी टी.पी. पाण्डे

59) मुक्तानंद काव्यम्, पृ. 165
60) मुक्तानंदकाव्यम्, पृ. 167
61) वही, पृ. 174
62) मुक्तानंदकाव्यम् पृ.180
63) यह कथा भागवद् स्कंध 1, अध्याय 5 में दी है। (मुक्तानंदकाव्यम, पृ.195)
64) स्वामीनारायण सम्प्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य पृ.106
65) मुक्तानंदकाव्यम् पृ.237
66) मुक्तानंद काव्यम्, भूमिका, पृ. 40
67) मुक्तानंद काव्यम्, भूमिका, पृ 43
68) वही. पृ. 434 तथा 435
69) स्वामीनाराय संप्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य पृ. 110
70) मुक्तानंद काव्यम् पृ.520
71) स्वामीनारायण सम्प्रदाय और उसका हिन्दी साहित्य, डॉ. देवीसहाय गुप्त पृ. 452
72) मुंक्तनंदकाव्यम् में से उद्धृत
73) स्वामीनारायण संप्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य पृ. 112
74) मुक्तानंदकाव्यम् पृ. 58
75) मुक्तानंदकाव्यम् पृ. 405 राग मंगल, पृ. 407 राग खट, पृ 407 राग खेणी, पृ. 409 राग विहाग आदि।
76) सत्संगी जीवन, प्रथम प्रकरण : निष्कुलानंद
77) स्वामीनारायण संप्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य पृ. 133
78) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 143
79) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 143
80) सम्पादक - राव साहब करमशी दामजी तथा मोतीलाल त्रिभोवन दास फोजदार
81) स्वामीनारायण संप्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य
82) मुक्तानंदकाव्यम् - पृ. 114
83) विवेक चिंतामणि पृ. 59
84) स्वामीनारायण सम्प्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य प्रदान ।
85) सम्पादक : राव साहब करमशी दामजी तथा मोतीलाल त्रिभोवनदास फोजदार ।
86) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 143
87) मुक्तानंदकाव्यम् पृ. 638
88) वही पृ. 555
89) वही पृ. 580
90) 'हरिगीता' हस्तलिखित प्रति से उद्धृत
91) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास 139

92) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 139
93) मुक्तानंदकाव्यम् भूमिका
94) वही पृ. 367
95) वही पृ. 348
96) मुक्तानंदकाव्यम् पृ. 658
97) वही. पृ. 658
98) मुक्तानंदकाव्यम् पृ. 40
99) मुक्तानंदकाव्यम्, पृ.40
100) मुक्तानंदकाव्यम्, भूमिका, पृ. 40
101) स्वामीनारायण संप्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य पृ. 132
102) मुक्तानंदकाव्यम् भूमिका, पृ. 39
103) मुक्तानंदकाव्यम्, पृ. 313
104) स्वामीनारायण सम्प्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य पृ. 129
105) मुक्तानंदकाव्यम् पृ. 306
106) वही, पृ. 30

* * *